प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियो मे हैं जिन्होने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माए अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानो मे वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका वह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व मे समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप मे उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया हे जो सासारिक प्राणियो के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तभ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मिया युगो–युगो तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि न तो उन साहित्य रश्मियो को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनो हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को "नानेश वाणी" पुस्तक शृखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सदर्भ मे बेंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानी ने अर्थ सबधी व्यवस्था मे जो सद्प्रयत्न किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व मे समीक्षण धारा नाम से प्रकाशित पुस्तक की नयी आवृत्ति है। इसमे कुछ सशोधन परिसस्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रथम सस्करण के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्री फतेहचन्दजी कोठारी व द्वितीय सस्करण हेतु धूडमलजी डागा, गगाशहर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हू।

यद्यपि सम्पादन–प्रकाशन मे पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठको से निवेदन है कि वे हमे अवगत कराये ताकि आगामी सस्करणो मे भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक
शातिलाल सांड
सयोजक साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ भा सा जैन सघ, समता भवन, बीकानेर।

अर्थ सहयोगी परिचय

आत्मधर्म के अनन्य उपदेष्टा आचार्य श्री नानेश की प्रस्तुत कृति समीक्षण धारा (7) का प्रकाशन स्व सेठ श्रीमान् चादमल जी डागा एव स्व श्रीमती मेहतुदेवी की पुण्य स्मृति मे उनके आत्मज श्री धूड़मल जी डागा एव पौत्र-द्वय श्री माणकचद जी, जीतमलजी डागा के अर्थ सौजन्य से हो रहा है। धर्म परायणता, समाज सेवा सघ/शासन समर्पणा तथा गुरु निष्ठा मे बेजोड़ पिता पुत्र के परिवार से त्रिवेणी सघ ही नहीं, अपितु श्री अ भा साधुमार्गी जैनसघ और समग्र जैन समाज भी गौरवान्वित है।

बीकानेर जिलान्तर्गत नापासर के निकटवर्ती गाव रामसर मे जन्मे श्री चादमल जी की शिक्षा अपने पितृश्री के व्यापार स्थल तूफानगज (कूचबिहार) मे हुई। सेवा, सघनिष्ठता एव धर्माचरण के सस्कार अपने पिताजी स्व श्री रूपचन्द जी से विरासत मे प्राप्त कर आपने अतुल श्रमनिष्ठता, अनुपमेय प्रतिभा एव व्यावसायिक कौशल से व्यापार में अभिवृद्धि तो की ही, कूचबिहार राज्य मे जमींदार बनकर अपनी बहुमुखी सफलता, प्रामाणिकता व ईमानदारी के बल पर राज दरबार मे एक कुर्सी का सम्मान भी प्राप्त किया। मातुश्री श्रीमती मेहतुदेवी (आत्मजा स्व जेसराज जी पारख-नोखा व अग्रजा स्व श्री मूलचद जी पारख) ने इन्हे करूणा, दान व लोक कल्याण की जन्मघूटी दी। आपने विपुल अर्थोपार्जन तो किया ही, समाजिक/धार्मिक/शैक्षणिक कार्यों मे मुक्तहस्त से दान देकर अपनी पृथक् पहचान भी बनाई। श्री नई लेन ओसवाल पचायती, गगाशहर व श्री जैन जवाहर विद्यापीठ, भीनासर के अध्यक्ष पद पर रहकर की गई आपकी सेवाए स्तुत्य एव अनुकरणीय है। आपके पुत्र त्रय (स्व श्री कालूराम जी, श्री फतेचन्द जी, श्री धूड़मल जी) एव पुत्री-द्वय (श्रीमती जेठीदेवी सिपानी, श्रीमती मोहनीदेवी सेठिया) मे धर्मनिष्ठा, सेवा, शासन समर्पणा, गुरु निष्ठा व जन कल्याण के सस्कार जन्मजात है।

रामसर मे वि स 1984 मिगसर बदी 8 को जन्मे श्री धूड़मल जी ने पूर्वजो से प्राप्त धर्मपरायणता व व्यावसायिक कुशलता के सस्कारो मे निरन्तर वृद्धि की ओर तूफानगज, कूचबिहार, आसाम, बीकानेर,

अनूपगढ व लूणकरणसर मे व्यापार को नव आयाम दिये। बीकानेर मे मॉडर्न वूलन मिल व डागा उद्योग (दाल मिल) सहित आपने बैंगलोर मे महालक्ष्मी प्लास्टिक्स, प्लास्टो पैरेडाइज व अप्सरा पोलीमर्स प्रा लि के नाम से उद्योग, व्यापार क्षेत्र मे निरन्तर सफलता प्राप्त की। अनेक सामाजिक, धार्मिक, औद्योगिक सस्थाओ से सम्बद्ध रहकर आप अनुपम सेवा के कीर्तिमान स्थापित कर रहे है। सम्प्रति आप श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ, गगाशहर-भीनासर के अध्यक्ष एव श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ तथा श्री बीकानेर दाल मिल एसोसिएशन के उपाध्यक्ष है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती भवरीदेवी (आत्मजा स्व श्री छगनमल जी बोथरा, गगाशहर (पाणिग्रहण वि स 2000 फाल्गुन बदी 10) सच्ची सहधर्मिणी है, जो आपको सत् कार्यो मे प्रवृत्ति, सातत्य हेतु सदैव सहयोग प्रदान करती है।

आप व आपके भाईयो ने वि स 2028 मे गगाशहर मे डागा गेस्ट हाउस का निर्माण कराया जहा आचार्य श्री नानेश का आचार्य पदारोहण के पश्चात् सर्व प्रथम वि स 2029 माघ सुदी 5 को बीकानेर क्षेत्र मे प्रवेश हुआ। आपने आचार्य देव के स्वास्थ्य हेतु विशेष सेवा की और सत-सती वृन्द की स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा मे आप सदैव अग्रणी रहते है। नानेश नगर (दाता) मे छात्रावासीय स्कूल मे एक कमरा निर्मित कराकर एव नानेश चिकित्सालय को एक एम्बूलेस वाहन भेटकर सामाजिक, धार्मिक, जन कल्याणकारी कार्यों मे अहम् भूमिका का निर्वहन किया है।

उल्लेख्य है कि आपके आत्मज द्वय-श्रीमानकचद जी जीतमल जी एव आत्मजा-श्रीमती पुष्पादेवी नाहटा विनयवान, सुशील एव सघ/शासननिष्ठ है। पुत्र क्रमश बैंगलोर व बीकानेर मे व्यवसायरत है और सामाजिक/धार्मिक कार्यों के प्रति अनन्य आस्थावान तथा आचार्य भगवन् के अटूट भक्त है। पीढी दर पीढी सस्कारो की सरिता इस प्रकार अनवरत प्रवहमान है।

सत् साहित्य प्रकाशन हेतु सघ द्वारा आभार।

उदय नागोरी

सदस्य, साहित्य प्रकाशन समिति

अनुक्रम

समीक्षण-समीक्षा

- बुद्धि की निर्मलता
- अहमत्व ममत्व का विनाश हो
- एसो पच णमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो
- तर्क से अगम्य, मति से अग्राह्य आत्म–स्वरूप
- नमन की विधि
- सधियो का झुकाव
- सधियॉ क्या हैं?
- समीक्षण से अवलोकन प्रभु का
- राधावेध और समीक्षण ध्यान
- एक नमन से सभी पापो का विनाश
- बाहुबलीजी की अन्त विचारणा
- समीक्षणपूर्वक नमन हो

यस्य ज्ञान–मनन्त वस्तु विषयं, य पूज्यते दैवतै,
र्नित्यं यस्य वचो न दुर्नय–कृतै· कौलाहलैर्लुप्यते।
राग–द्वेष मुख–द्विषा च परिषत् क्षिप्ता क्षणाद्येन सा,
स श्री वीर विभुर्विधूत–कलुषा बुद्धि विधत्ता मम।।

सुज्ञ बधुओ! इस श्लोक के माध्यम से चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर के चरणो मे दार्शनिक शैली मे आत्म निवेदना प्रस्तुत की गई है।

श्लोकगत पक्तियो मे बतलाया गया है कि भगवन्! आप अखिल वस्तु–स्तोम के विज्ञाता केवल (सम्पूर्ण) ज्ञान के धारक हैं। देवगण सदा–सर्वदा आपकी अर्चना करते है। दुर्नय–रूप वचन–प्रवाह आपकी वचन–गरिमा को लुप्त नहीं कर सकता। राग–द्वेषरूप महारिपुओ को जीतकर आपने भीतर के शत्रुव्यूह का भेदन कर डाला है।

बुद्धि की निर्मलता

हे प्रभु! "विधूत कलुषा बुद्धि विधत्ता मम" आप मुझे काषायिक वृतियो रहित, निर्मल समीक्षण बुद्धि प्रदान करे।

यद्यपि यह ध्रुव मान्यता है कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सिद्ध अवस्थासम्पन्न परमात्मा हमे कुछ भी नही देते है तथापि प्रस्तुत श्लोक मे निर्मल बुद्धि की याचना की गई है, इससे यह तात्पर्य है कि मुमुक्षु आत्मा सिद्ध प्रभु को आदर्शरूप मे मानकर स्वय के भीतर विराजमान सिद्धत्वस्वरूप को उद्भाषित करने के लिए प्रयत्नशील बने। क्योकि शास्त्रकारो की दृष्टि मे तो **अप्पा सो परमप्पा** –आत्मा ही परमात्मा है। विश्व की समस्त आत्माओ मे परमात्मा की शक्ति निहित है। आवश्यकता हे– उसके ऊपर आगत परतो को उखाड फेकने की। इसी के लिए प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि जिसके फलस्वरूप हमारी आत्मा पुरुषार्थशील बने।

अहमत्व-ममत्व का विनाश हो

जो सत् चित् आनन्दघन वाला सिद्धत्व स्वरूप कर्माच्छादित हे, वह

क्यो है? यह आवरण सहेतुक है या अहेतुक? एतद्‌विषयक चर्चा का अभी अवकाश नही है। परन्तु यह तो निश्चित ही है कि विश्व मे जितनी भी आत्माए हैं–चाहे उनका शरीर लघु हो या स्थूल, पर है वे आनन्दघन रूप ही। ऐसा आनन्दघन रूप ससारी प्राणियो के अन्यान्य काषायिक रगो से विकृत हो चुका है। उन रगो को हटाने के लिए सबसे पहले बुद्धि को निर्मल बनाया जाय, बुद्धि की निर्मलता होने पर ही दृष्टि समीक्षक बन सकेगी।

बुद्धि की निर्मलता तथा समीक्षण अवस्था को पाने के लिए साधक को सबसे पहले अहमत्व और ममत्व को विसर्जित करना आवश्यक है। इन दोनो तत्त्वो की विद्यमानता मे बुद्धि मे निर्मलता, विमलता, शान्ति नही आ सकती।

एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो

समता, शान्ति को पाने की यदि सच्ची जिज्ञासा, सच्ची भूख हो तो आदर्श रूप उस सत् चित् आनन्दघन को नमन करे। वह नमन किस रूप मे हो, क्या विधि है उसकी? यह जान लेना भी आवश्यक है। यद्यपि नमन करने की अनेक विधिया हैं, फिर भी नमस्कार महामत्र के रूप मे पच परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। इस नमस्कार महामत्र की फल श्रुति के पद, रहस्यात्मक और बहुत ही महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण की ओर इगित करते हैं।

एसो पच णमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो

अर्थात् पच परमेष्ठी को किया गया नमस्कार, सभी पापो का विनाश करने वाला होता है। इस नमस्कार मत्र की फलश्रुति को सुनकर आधुनिक युग का प्राणी, जो वैज्ञानिक युग के प्रत्यक्षीकरण मे जी रहा है, वह इस पर विश्वास नही करता। उसका कहना है कि जब नमस्कार मत्र का जाप कर लेने मात्र से सभी पापो का विनाश हो जाता है तो फिर अन्यान्य तप, जप, कठोर साधना करने की क्या आवश्यकता है ?

तर्क से अगम्य, मति से अग्राह्य आत्म-स्वरूप

तर्क का युग हैं। हर चिन्तनशील व्यक्ति तर्क से समझना चाहता है और वह उचित भी है। किन्तु विशिष्ट आत्माओ की दृष्टि मे तर्क का उतना महत्त्व नही है। आत्मा के परम स्वरूप की विज्ञप्ति तर्क द्वारा नही हो सकती। कहा भी है–

तक्का जत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया।

तर्क से वह परम स्वरूप जाना नही जा सकता, मति उस विषय को ग्रहण नहीं कर सकती।

तर्क से अगम्य होते हुए भी प्रारम्भिक साधना पथ पर चलने वाला साधक, साधना पथ पर गति करने के लिए सतर्क समाधान चाहता है। जब उसे हृदयग्राही सचोट समाधान मिल जाता है तो वह साधना पथ पर मनोयोगपूर्वक गति कर सकता है। हॉ, तो मैं कह रहा था कि नमस्कार मन्त्र के उच्चारण से सभी पापो का विनाश कैसे हो सकता है?

प्रश्न किया जिज्ञासुओ ने और साथ ही प्रतिक्रिया भी, कि हम इस नमस्कार मत्र का एक बार, दो बार नही, लाखो बार जप कर चुके हैं। हमारे तो सभी पापो का नाश हो ही गया होगा। हम तो अब निष्पाप बन गए, अब कोई साधना करना अवशेष रहना ही नही चाहिए।

अन्य स्थान पर भी ऐसी ही बात कही है —

एक्को विणमोक्कारो, जिणवर सहस्स वद्धमाणस्स।
संसार सागराओ तारेइं, नर वा नारीं वा।

जिनेश्वर ऋषभ देव से लेकर वर्द्धमान पर्यन्त जिनेश्वरो को किया गया एक नमस्कार भी ससार–सागर से पार उतारने वाला होता है, चाहे नमस्कार करने वाला नर हो या नारी हो।

एक नमस्कार से ही सभी पापो का नाश हो जाता है, लेकिन हमारे द्वारा इतना नमस्कार करने पर भी पापो के विनाश से होने वाला जीवन मे रूपान्तरण कुछ भी नही हुआ।

नमन की विधि

प्रश्न बहुत सहज, सुबोध प्रतीत होता है, लेकिन अपने पीछे गहरा चिन्तन छोड जाता है। सम्यक् विधि से पॉचो पदो को नमस्कार करना तो बहुत दूर हे, यदि केवल एक ही पद को सम्यक् विधि से नमस्कार कर लिया जाय तो सत् चित् आनन्दघन का स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है।

लेकिन आज नमन, विधि से कहा हो रहा है? कोई किस विधि से कर रहा है तो कोई किसी अन्य विधि से कर रहा है। आप गुरु वन्दन भी

करते हैं तो किसी तरीके से थोडा सिर झुका लिया, थोडे–से हाथ जोड लिए, अधिक हुआ तो दोनो घुटने जमीन पर टिका दिये और ज्यादा हुआ तो दोनो हाथ भी जमीन पर टिका दिए और तिक्खुत्तो के पाठ का उच्चारण कर लिया। और मन मे सोच लिया कि हमने वन्दन कर लिया । परन्तु यह चिन्तन कम किया जाता है कि हमारी वन्दन विधि कहा तक उचित है? कही यह उच्चारण तोता रटन्त तो नही हो रहा है? जीवन मे विषयासक्ति कितनी–क्या अठखेलियॉ खेल रही है? भौतिक लालसाओ का प्रवाह कितना काम कर रहा है? जब तक अन्तरग जीवन का सशोधन सही रूप से नहीं होगा, तब तक नमस्कार मत्र के पदो को किया गया एक नही अनेको बार का नमन भी सार्थक नही हो सकता।

संधियों का झुकाव

भगवान महावीर की प्रथम देशना, जो आचाराग सूत्र के माध्यम से आई है, उसमे कहा है कि —

आयत चक्खू लोग विपस्सी, लोगस्स अहो भागं जाणई, उड्ढ भागं जाणइ, तिरियं भाग जाणइ।।

आचा 2/5/91

दीर्घदर्शी पुरुष लोकदर्शी होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है, तिरछे भाग को जानता है।

सूत्र का अर्थ बहुत गम्भीर है। प्रभु ने लोक को देखने का सकेत किया है। अनेक आचार्यो ने सूत्र की व्याख्या करते हुए, लोक से चउदह रज्वात्मक लोक अर्थ लिया है, इसको देखा जाय, पर इस व्याख्या तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए, इस शरीर पिण्ड को भी लोक कहा गया है। इसके अन्दर भी तिर्यक् लोक, ऊर्ध्व लोक और अध लोक विद्यमान हैं। हमारे शरीर का अधभाग अधो लोक, मध्य भाग तिर्यक् लोक और ऊर्ध्व भाग ऊर्ध्व लोक है।

उस लोक को देखना है। प्रश्न होगा कि क्या देखे? और कैसे देखे? समाधान का अगला वाक्य आया **सधि विइत्ता इहमच्चीएहि** तुम अपनी सधियों को जानकर, उन्हे झुकाओ और द्रव्य भाव से मुक्त बनो।

संधियाँ क्या हैं?

सधियॉ क्या हैं? यह भी समझना आवश्यक होगा। ऊपरी तौर पर

शरीर की तीन सधियॉ ली जाती हैं। कुछ सक्षिप्त विस्तार से 14 सधियाँ भी ली जाती हैं जो झुक जाती है। परन्तु नमन की प्रक्रिया इन सधियो तक ही सीमित नही है। शरीर के अन्दर तैतीस सौ सधियॉ है। उन सभी को सम्यक् विधि से झुकना होगा।

शरीर पॉच होते हैं– औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कार्मण। इन पॉच शरीरो मे सभी औदारिक शरीरान्तर्गत स्थूलावस्थान से सम्बन्धित उपर्युक्त सधियॉ है। इस देह पिण्ड मे स्थूलावस्थान, सूक्ष्मावस्थान, सूक्ष्मतमावस्थान, मूर्छावस्थान, विवेक विकलावस्थान, अज्ञानावस्थान और अनभिव्यक्त आनन्दावस्थान आदि अनेक अवस्थान हैं। इन सबकी व्याख्या समय साध्य है। अभी तो मैं सक्षिप्त रूप से इतना ही कहता हू कि नमन करने के लिए पहले स्थूलावस्था से सम्बन्धित सधियो को समीक्षण दृष्टि से अवलोकन करना होगा। राग–द्वेष की परिणितिया जब तक मन मे रहेगी, विकृत विचारो का अवस्थान रहेगा। भौतिकता का रग जमा हुआ ही रहेगा, तब तक बुद्धि निर्मल नही बन सकती और जब तक बुद्धि निर्मल नही बनेगी तब तक दृष्टि मे भी समीक्षण अवस्था नही आ सकती और समीक्षण दृष्टि के अभाव मे किया गया अवलोकन कभी भी सार्थक नही हो सकता।

समीक्षण में अवलोकन प्रभु का

स्वय प्रभु महावीर ने लोक का अवलोकन समीक्षण दृष्टि से किया था। सूत्रकृताग सूत्र के वीरस्तुति अध्ययन की गाथा मे बतलाया है –

उड्ढ अहेयं तिरिय दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा।

से निच्च निच्चेहि समिक्ख पण्णे दीवे व धम्म समिय उदाहु।।

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रज्ञापुरुष प्रभु महावीर ने ऊर्ध्व लोक, अध लोक, तिर्यक् लोक मे स्थित त्रस एव स्थावर जीवो की अनित्यता का समीक्षण कर, दीपक के समान धर्म को व्याख्यायित किया।

बन्धुओ। प्रभु के द्वारा सही धर्म की प्ररूपणा भी समीक्षण दृष्टि के आधार पर ही हुई है। जब तक अन्तरग से राग–द्वेष का मनोमालिन्य नही हटता, विचारो मे समता भाव नही आता, तब तक धर्म की यथार्थ विवेचना नही हो सकती। प्रभु ने स्पष्ट कहा है –

"पण्णा समिक्खए धम्म" हे पुरुष। प्रज्ञा से धर्म का समीक्षण कर।

समता के धरातल पर ही वाह्य एव अन्तरग का अवलोकन करना है। यह स्थिति ही समीक्षण ध्यान की कोटि मे आती है। इस सम्यक् अवलोकन के लिए शरीर की बाह्य ओर भीतरी– दोनो ही प्रकार की जितनी भी सधियाँ है उनको झुकाना होगा। बाह्य और अन्तरग दोनों ही सधियो से जब समीक्षणपूर्वक नमन होगा, तो निश्चित रूप से सभी पापो का नाश हो जाएगा।

राधावेध और समीक्षण ध्यान

कौरवो और पाण्डवो के जीवन का एक प्रसग है। जब द्रोणाचार्य के पास मे वे धनुर्विद्या का अध्ययन कर रहे थे, उस समय भीष्म पितामह आदि सरक्षको की इच्छा हुई थी कि इनकी परीक्षा आम जनता के बीच मे हो। द्रोणाचार्य ने मजूरी दे दी। विशाल मैदान का चयन हुआ। मैदान के मध्य मे एक स्तम्भ रोपा गया। स्तम्भ के ऊपरी भाग पर एक मयूर का पख बॉधा गया और स्तम्भ के मूल भाग मे एक खड्डा खोदकर तेल भर दिया गया। द्रोणाचार्यजी सभी विद्यार्थियो को लेकर परीक्षा स्थल पर पहुँचे। यथास्थान बैठने के बाद किस विद्यार्थी को पहले खडा करना चाहिये– इसका चिन्तन करने लगे। इधर दुर्योधन अपनी ईर्ष्यालु बुद्धि के अनुसार सोचने लगा कि द्रोणाचार्यजी कहीं अर्जुन को पहले खडा न कर दे। ऐसा सोचकर वह स्वय ही सबसे पहले जहाँ मयूरपिच्छ के चॉदले को तीर से बींधने का स्थान था, वहा जाकर खडा हो गया। धनुष को व्यवस्थित कर निशाना साधने लगा। इतने मे द्रोणाचार्यजी ने पूछा– "वीर दुर्योधन! तुझे क्या दिखलाई दे रहा है" गर्व के साथ उत्तर दिया दुर्योधन ने– "मुझे आप दिखलाई दे रहे हैं, साथ ही सभी दर्शक एव स्तम्भ, मयूरपिच्छी तथा बाण की नोक भी दिखलाई दे रही है।"

द्रोणाचार्य चिन्तन करने लगे कि यह कितना कठिन विषय है और इस वक्त इसको सब–कुछ दिखलाई दे रहा है, यह क्या सफल हो पायेगा? इसका मन बिखरा हुआ है। फिर भी द्रोणाचार्य उसकी भावना को देखकर बोले–अच्छा।

इतना सुनते ही दुर्योधन ने तीर चला दिया। फलस्वरूप निशाने पर तीर नही लगा। मयूरपिच्छ किधर ही रहा और बाण किधर ही चला गया। लोगो मे खूब हँसी हुई। तालियो की गडगडाहट हुई। इतना होने पर भी ईर्ष्यालु दुर्योधन ने अपने बाद अपने भ्राताओ को एक के बाद एक को भेजा लेकिन सारे ही उसके भाई असफल रहे। तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को सकेत

किया। अर्जुन खडा होकर हाथ जोडकर सिर झुकाता हुआ बोला– "क्या आज्ञा है आपकी?" द्रोणाचार्य बोले– "एक ही निशाने मे मयूरपिच्छी का चॉदला उडाना है।" तथास्तु कह कर अर्जुन ने द्रोणाचार्य एव तत्रस्थ सभी महानुभावो को नमन करके उपस्थित जन–समूह को नमस्कार किया। तदनन्तर नियत स्थान पर पहुॅचा। उसका मस्तिष्क ईर्ष्या के दुर्गुणो से दग्ध न था। अतएव वह सही सोचने मे भी सक्षम था। चिन्तन करने लगा कि स्तम्भ के नीचे ही तेल क्यो भरा गया है? स्वय की प्रतिभा से उसे बोध हुआ कि चॉदला ऊँचा है। ऊपर दृष्टि करने से निशाना चूकने का अदेशा है। तेल के अन्दर चॉदले का प्रतिबिम्ब पड रहा है। इस प्रतिबिम्ब को देखकर निशाना जमाना चाहिये। वैसा ही किया उसने एकाग्रता के साथ। तीर चलाने से पूर्व द्रोणाचार्य ने पूछा– "अर्जुन, तुझे क्या दिखता है?" अर्जुन बोला– "गुरुदेव! चॉदला एव बाण की नोक के अतिरिक्त कुछ भी नही दिखता है।" द्रोणाचार्य बोले, "बस, तुम्हारा कार्य सफल है।"

बाण छूटा और सीधा निशाने पर लगा। जयनाद से गगन मण्डल गूॅज उठा।

द्रोणाचार्य ने कहा– एक ही बाण मे चॉदला उडाने की एकाग्रता अर्जुन को प्राप्त हो गई है। अब यह राधावेध नाम की विद्या सीखने के योग्य है। उस राधावेध नाम की विद्या मे अत्यधिक एकाग्रता की आवश्यकता रहती है। क्योकि अनेक पखडियो वाले दो चक्र एक–दूसरे के विपरीत दिशा मे शीघ्रता से घूमते हैं। उन चक्रो के ऊपरी भाग पर निशाना रहता है। उन विपरीत दिशा मे घूमते हुए चक्रो के बीच मे से निशाना साधना होता है। बन्धुओं! यह तो एक रूपक है। मन मे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के विचार रूप चक्र परस्पर विपरीत दिशा मे घूमते रहते हैं। उन शुभाशुभ विचार–चक्रो के बीच मे समीक्षण दृष्टि से अवलोकन के साथ परमात्मा के तुल्य आत्मा का साक्षात्कार करना, लक्ष्यानुरूप निशाना साधना होता है। इस निशाने को साधने मे वही साधक सफल हो सकता है जिसकी दृष्टि बाहर की ओर प्रसृत न होकर स्वच्छ मन मे लगती है, उस मन की स्वच्छता, स्निग्धता एव गम्भीरता मे रही हुई है। जिस प्रकार तेल स्वच्छ, स्निग्ध एव भारी होता है, उसी प्रकार जिस साधक का मन जगत के प्रत्येक प्राणी के साथ आत्मीय स्निग्धता से युक्त हो अर्थात सभी को अपनी आत्मा के तुल्य देखने की क्षमता हो, विषमता की कलीमष गन्दगी से रहित समता की स्वच्छता से युक्त हो

एव अनेक विकट परिस्थितियो के बावजूद भी धैर्य रूप गम्भीरता से वजनी हो, वही व्यक्ति स्थूलावस्था आदि की सभी सन्धियो को समीक्षण दृष्टि से देखता हुआ अरिहत पद के अर्थ के प्रति झुका देता है तो वह एक पद के नमस्कार से सभी पापो का नाश करने मे समर्थ हो जाता है, अर्थात् आत्मा एव परमात्मा के निशाने को साध लेता है।

एक नमन से सभी पापों का विनाश

जब द्रव्य–भाव उभय प्रकार की सधियो का झुकाव होता है, समीक्षण दृष्टि बनती है तो साध्यता प्राप्त हो ही जाती है। अर्थात् इस प्रकार का नमन सभी पापो का विनाश करने वाला होता है। बाहुबलीजी का रूपक आपने सुना ही होगा। जिनकी शक्ति के सामने षट्खण्डाधिपति चक्रवर्ती भरत को भी झुकना पडा। जिनका भुजबल बडे–बडे योद्धाओ को धराशायी करने मे समर्थ था। लेकिन जब उनके अन्तर्जीवन मे विरक्ति का बीज प्रस्फुटित हुआ उन्हे सारा ससार निस्सार लगने लगा। भौतिकता मे उन्हे सुख नहीं सुखाभास प्रतीत होने लगा। जलती हुए दुनिया मे आत्मा का त्राण–रक्षण करने के लिए युद्ध क्षेत्र मे ही पच मुष्टि लुचन कर लिया।

खतो दतो निरारभो पव्वइय अणगरिय।

शान्त, दान्त, निरारभी अनगार के रूप मे प्रव्रजित हो गये। चल पडे आत्म–साधना के विशाल पथ पर। सब–कुछ छोड दिया, किन्तु अन्तरग सधिया नहीं झुक पाई। अभिमान का विषधर फूत्कार उठा। अहो! मेरे दीक्षित होने से पहले मेरे ही सहोदर 98 भ्राता दीक्षित हो चुके हैं। मैं उनको कैसे नमन करू? मै बडा हू, वे छोटे हैं। लेकिन प्रभु चरणो मे जाऊगा तो अवश्य ही उन्हे नमस्कार करना होगा। इसी विचारधारा ने उनको उद्विग्न बना दिया। अन्त मे उन्होने यह निर्णय लिया कि मैं अभी प्रभु चरण मे नही जाऊगा। 'जब तक मैं केवलज्ञान प्राप्त न कर लू, तब तक नही जाऊगा। पापो का विनाश और दिव्य ज्ञान उत्पन्न होने के बाद मुझे उन लघु भ्राताओ के चरणो मे नही झुकना पडेगा।'

साधना की चरम परिस्थिति पाने के लिये बाहुबलि अणगार गहन कान्तार मे चले जाते हैं। दृढ निश्चय के साथ अर्थात् "देह वा पातयामि, कार्य वा साधयामि" या तो शरीर को छोड दूगा या कार्य की सिद्धि कर लूगा। मुझे या तो केवलज्ञान पा लेना है या शरीर छोड देना है। ध्यान–साधना मे तल्लीन

हो जाते हैं।

एक दिन नही, दो दिन नही, तीन दिन नहीं, एक मास, दो मास नहीं अपितु एक वर्ष बीत गया। बाहुबली अणगार अपनी साधना मे हिमानी की भाति अडोल, अप्रकम्प खडे रहे।

साहित्यिक भाषा मे कहा जाता है कि उनके शरीर पर पक्षियो ने अपने घोसले बना लिये, चारो तरफ झाडिया बन गईं। इतना सब कुछ होते हुये भी उन्हे कहा ज्ञान था? शरीर का ममत्व उन्होने छोड दिया था।

एक वर्ष बीत गया, उष्ण ऋतु से शीत ऋतु और शीत ऋतु से वर्षा ऋतु परिवर्तित हो गई लेकिन बाहुबली के अन्तरग मे केवलज्ञान का लोकोत्तर आलोक आलोकित नहीं हो सका। होता भी कैसे? क्योकि अभी तक आन्तरिक सधिया परिपूर्ण रूप से झुक नही पाई थी। मन के एक कोने में अभिमान जो स्थान जमाये बैठा था। छोटे भाइयो को नमन कैसे करू? इतना–सा अभिमान, इतनी सी विषम दृष्टि उनके केवलज्ञान मे बाधक बन रही थी।

जब सती शिरोमणि ब्राह्मी सुन्दरी के शब्द बाहुबली के कानो मे पडे–

वीरा म्हारा गज थकी नीचे उतरो,

गज चढिया केवल नही पासी रे।।वीरा।।

हे भ्रात! बाहुबली अणगार! गज–हाथी से नीचे उतरो। हाथी पर चढे–चढे केवलज्ञान प्राप्त नही होने वाला है।

बाहुबलीजी की अन्त विचारणा

अरे! मे कहा हाथी पर खडा हू, मैं तो भूतल पर खडा ध्यान–साधना कर रहा हू। फिर यह ब्राह्मी सुन्दरी मुझे गज पर चढा कैसे कह रही है? शब्दो की गहराई मे उतरे बाहुबलीजी और रहस्य को पा गये। अहो! मैं इस बाहरी हाथी पर नही किन्तु अभिमान रूपी हाथी पर चढा हुआ हू।

अहो! यही बाधक है अखिल वस्तु विज्ञान मे। जब तक अभिमान का स्तम्भ नही टूटेगा आन्तरिक सधिया नहीं झुकेगी तब तक आत्मशुद्धि की परम प्रकर्षता प्राप्त हो कैसे सकती हे? जब मैंने ससार त्याग दिया, राज्य–पाट वेभव परिवार आदि सभी सबधो का परित्याग कर दिया, अब

क्या उच्चता और निम्नता छोटे और बडे का प्रश्न रह गया है? जीवन का ही रूपान्तरण हो गया, अब तो वे सभी भ्राता मेरे से ज्येष्ठ हैं, दीक्षा पर्याय एव आध्यात्मिक साधना मे। मुझे मन मे ऐसी उच्चता, निम्नता की कल्पना ही नही करनी चाहिये। जाऊ मैं और नमन करू। इस विनम्र भावना के साथ ज्यो ही बाहुबलीजी ने अपना कदम बढाया, सभी सधियो को झुकाया, त्यो ही उन्हे केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। एक दृष्टि से सभी पापो का विनाश हो गया।

बन्धुओ! देखिये, जैसे ही बाहरी और भीतरी सधिया झुकी। आत्मा की काषायिक परिणतिया हटी, समीक्षक दृष्टि की परिपूर्णता आई, तत्क्षण अनन्त शान्ति का स्रोत फूट पडा। आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति मे लवलीन हो गई। यह है समीक्षण ध्यान की परिपूर्णता, जो कि आत्मा से परमात्मा भाव को उजागर करती है, शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेती है।

समीक्षण पूर्वक नमन हो

भव्य आत्मा को भव्यता का परम आदर्श रूप प्राप्त करने के लिये विचारो का शुद्धिकरण करना होगा। विचारो की शुद्धि पर ही आत्मशुद्धि सम्भव है, वैचारिक शुद्धि के लिए आत्म–सशोधन और समीक्षण ध्यान की गहराइयो मे उतरना होगा। जहा बल्ब का घेरा है, वहा प्रकाश आ ही जाएगा, लेकिन घेराव स्वच्छ होना चाहिये, इसी प्रकार आत्म प्रकाश के लिये विचारो का घेराव निर्मल, स्वच्छ होना चाहिये।

अन्त मे मैं पुन यही कहूगा कि आप सभी समीक्षण ध्यान साधना की उत्कर्षता के साथ एक णमो अरिहताण को ही नमस्कार करेगे, तो सभी पापो का नाश हो जायेगा।

समीक्षण का प्रभाव

- आदर्शमय जीवन सुबाहुकुमार का
- समीक्षण का प्रभाव
- समान शक्तिस्रोत सभी का
- समीक्षण साधना साधु जीवन मे
- समीक्षण बिना निस्सार जीवन
- समीक्षण साधना प्रभु के जीवन मे
- समीक्षण दृष्टि का ज्वलत आदर्श
- आत्मीयता से प्रभावित सिह
- ध्यान समीक्षक बनो

तम्हा उ मेहावी समिक्ख धम्म

—सूत्र कृताग सूत्र 1/7/6

हे मेधावी धर्म का समीक्षण करो।

धर्म की परिभाषा "वत्थु सहावो धम्मो" के रूप मे की जाती है। अर्थात् वस्तु का निजी स्वभाव ही धर्म है। चाहे वस्तु जीव रूप मे हो या अजीव रूप मे। उनके मौलिक स्वरूप को यथातथ्य रूप मे सम्यक् प्रकार से निरीक्षण करना है। इस समीक्षण की वृत्ति को विकसित करने के लिए सबसे पहले अपने—आपका सशोधन एव समीक्षण करना होगा। कषायो को हटाना होगा, वैभाविक वृत्तियो को विलय करना होगा, विश्व की समस्त आत्माओ के प्रति आत्मीय भाव रखना होगा।

इस प्रकार की समीक्षण साधना से जीवन मे आश्चर्यजनक शक्तियो का प्रकटीकरण होने लगता है।

महान् क्रातिकारी, क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुकमीचन्दजी म सा की समीक्षण ध्यान साधना के फलस्वरूप लोह शृखलाए कच्चे सूत की भाति टूट कर गिर गईं।

श्री सुपार्श्व जिन वदिए, सुख सम्पतिनो हेतु ललना।
शान्त सुधारस जल निधि, भव सागरमा सेतु ललना।।
श्री सुपार्श्व

सात महाभय टालतो, सप्तम जिनवर देव ललना।
सावधान मनसा करी, धारो जिन पद सेव ललना।।
श्री सुपार्श्व

सप्तम तीर्थंकर प्रभु सुपार्श्वनाथ की स्तुति का प्रसग चल रहा हे। सभी तीर्थंकरो का भावात्मक जीवन एक समान होता है।

उनके अनन्त चतुष्टय मे किसी भी प्रकार की कमी नही आती। जितने ज्ञानादि गुण प्रभु ऋषभदेव मे थे, उतने ही ज्ञानादि गुण भगवान महावीर मे थे। और ये गुण प्रभु पार्श्वनाथ मे भी थे।

जो कुछ विशेष अन्तर था तो जीवन से सम्बन्धित घटनाओ से तथा द्वादशागी के विवेचना करने के प्रकारो मे रहा, मूल तत्त्वो मे नही।

सुपार्श्वनाथ भगवान की स्तुति के प्रसग से कवि ने बतलाया है कि हे अन्तरात्मा रूपी ललना तुझे आध्यात्मिक सुख–सम्पत्ति को प्राप्त करना हे। वास्तव मे आध्यात्मिक सम्पत्ति ही शाश्वत सुख प्राप्त करवाने वाली होती है। आध्यात्मिक सुख के रस को, आध्यात्मिक आनन्द को जिसने भी प्राप्त किया है, उनका चित्रण भी शास्त्रकारो ने कर दिया है।

आपके समक्ष सुख–विपाक सूत्र के माध्यम से सुबाहुकुमार के जीवन का वर्णन आ रहा है, जो कि जीवन के लिए महान् प्रेरणास्पद है।

आदर्शमय जीवन सुबाहुकुमार का

सुबाहुकुमार सभी गुणो से सम्पन्न था। इसीलिए तो गौतम स्वामी ने प्रभु से पूछा– भगवन्! इस सुबाहुकुमार ने गत जन्म मे "किवा दच्चा, किवा भोच्चा, किवा किच्चा, किवा समायरियत्ता", क्या दिया था? क्या खाया था? क्या किया था? और क्या आचरण किया था? जिसके फलस्वरूप इस जीवन मे उसने महान् ऋद्धि, समृद्धि प्राप्त की है।

ऐसे प्रेरणा–प्रद जीवन को अवधानता के साथ श्रवण करके, उसके अनुरूप अपने जीवन को भी बनाया जा सकता हे। सुबाहुकुमार की तरह ही

अपने–आपको विश्व के लिए एक आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बनाया जा सकता है।

ससार की दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन सम्यक्तया अवलोकन नही किया जा सकता है।

चर्म–चक्षु अरूपी तत्त्व को देखने मे समर्थ नही है। जब तक मानव जीवन अन्तर्मुखी नही बनता, तब तक उसकी दृष्टि बाह्य तत्त्वो मे ही घूमती रहती है। बाह्य तत्त्वो के पीछे ही वह अपनी बहुमूल्य ऊर्जा को खर्च कर देता है। ऐसा मानव पुन जन्म–जन्मान्तर की दीर्घ कान्तार मे भटकने चला जाता है या यो कहा जाय कि अथक परिश्रम से समुद्र के किनारे आने वाला तैराक थोडी–सी कमजोरी के कारण समुद्र मे डूब जाता है।

समीक्षण का प्रभाव

साहस और धैर्य के साथ की जाने वाली प्रगति एक दिन परिपूर्णता को प्राप्त करने वाली होती है।

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने घातिक कर्म की क्षपणा के लिए, ज्ञान शक्ति की परिपूर्णता के लिए वर्षों तक साधना की थी। समीक्षण दृष्टि से अन्तरग और बहिरग को निहारा।

जीवन के कण–कण से कषायो का विलगीकरण कर डाला।

आत्मा का परिपूर्ण शोधन किया। ज्ञान का अभिनव आलोक जगमगा उठा। शाति और समता का स्रोत प्रवाहित हुआ। जिस योग का अनूठा प्रभाव जनमानस पर ही नही, पशु–पक्षियो पर पडे बिना नहीं रहा, प्रभु के अहिसामय सान्निध्य मे जन्मजात शत्रु सर्प और नेवला, शेर और बकरी भी प्रेम से निर्वैर भाव से बैठते।

समान शक्तिस्रोत सभी का

ऐसी साधना, प्रत्येक साधनशील साधक कर सकता है। लेकिन जो साधु साहस और धैर्य का अवलम्बन न लेकर चापल्य वृत्ति वाला बन जाता है, वह साधक कभी भी उन्नत दशा को प्राप्त नही कर सकता।

उदाहरण के रूप मे एक स्थल पर एक मनुष्य पहुचा, जहा पर हीरे और ककर का ढेर लगा हुआ था, उसमे से कुछ भी ग्रहण करने की उसको छूट थी। इतना होने पर भी वह व्यक्ति उनमे से रत्न न लेकर ककर उठाने

लगता है, तो ऐसे व्यक्ति को आप क्या समझेगे? मूर्ख ही तो समझेगे ना? सज्जनो! यह तो पौद्गलिक तत्त्व से सम्बन्धित बात हुई। किन्तु जो आत्मा साधु जीवन स्वीकार कर लेती है। उस आत्मा को आध्यात्मिक जीवन का अद्भुत खजाना हस्तगत हो जाता है। वह इससे इच्छानुसार बहुमूल्य रत्नो के तुल्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि विविध प्रकार के, अनेक प्रकार के रत्नो को प्राप्त कर सकता है। जो रत्न क्षणिक नही, शाश्वत शाति प्रदान कराने वाले होते हैं।

समीक्षण साधना साधु जीवन में

ऐसे आध्यात्मिक रत्नो का सग्रहण गृहस्थ जीवन मे उतना नही हो पाता। क्योकि गृहस्थ जीवन मे मनुष्य के सामने कई प्रकार की झझटे और समस्याए रहती हैं। उनमे भी मूलभूत आर्थिक समस्याओ को हल करने के लिए ही उसका मस्तिष्क दिन–रात तना रहता है। लेकिन साधु जीवन मे ऐसी कोई स्थिति नही रहती। उसके समक्ष मात्र आध्यात्मिक साधना का ही उद्देश्य रहता है। वह सभी प्रकार के चिन्तन से विप्रमुक्त रहता है। एक समय का भोजन भी मिलेगा या नहीं, यह चिता भी उसे नही रहती है।

आत्मा को मलिन बनाने वाले पाचो आश्रव का निरोध होता जाता है। बद्ध कर्मों का क्षय करना एव अध्यात्म का जागरण ही चलता रहता है। आत्मा के भीतर मे विद्यमान अमूल्य रत्न परमात्मा स्वरूप को प्रकट करना है।

समीक्षण बिना निस्सार जीवन

इतना सब–कुछ होते हुए भी जो साधक साधनाशील जीवन मे अमूल्य रत्नो का चयन नही करता है, समीक्षण पद्धति से जीवन का सशोधन नही करता है, किन्तु अपने जीवन मे कषायो के पत्थरो को एकत्रित करता रहता है, मत्र–तत्र, जादू–टोना आदि सासारिक कार्यो मे रच–पच जाता है, सत्कार, सम्मान का कामी बन जाता है– ऐसा साधक ककरो से युक्त रत्नो के ढेर मे से पत्थरो को ही एकत्रित करता रहता है।

अविनाशी लक्ष्य से हटकर विनाशी तत्त्व की ओर मुड जाता है, उसकी वृत्ति मोक्षप्राप्ति से हटकर ससार की ओर गति करने लगती है, उसकी साधना ससार को घटाने वाली न बनकर उसे बढाने वाली होती है– ऐसा साधु, साधु–जीवन की भूमिका पर नही रहता हे। ऐसे साधको के जीवन मे कभी भी विलक्षण प्रभाव नही पडता है। जो साधु अभी तक आत्म समीक्षण

मे न लगकर मत्र–तत्र मे पडा है, उसके जीवन मे अमूल्य रत्नो का विलक्षण प्रकाश नही आता। उसके स्वय के जीवन मे ही विलक्षण प्रकाश नही होने से वह दूसरो को प्रकाश कैसे दे सकता है?

समीक्षण साधना प्रभु के जीवन में

प्रभु महावीर का जीवन ऐसा नही था। वह तो अलौकिक रत्नो के तीव्र प्रकाश से जगमगा रहा था जिसका प्रभाव एक कोस, दो कोस नही अपितु 100 कोस की दूरी तक निरन्तर फैल रहा था। जिनके सामने शेर के मुख के नीचे ही बकरी निर्भयता के साथ बैठती थी।

भगवान महावीर ने यह जीवन्त अलौकिक शक्ति जिस शरीर के माध्यम से पाई, वह शरीर कोई आकाश से नहीं टपका था और न ही कोई पाताल से निकला था। जिस प्रकार आज मानव का शरीर माता की कुक्षि से बाहर आता है, उसी प्रकार प्रभु महावीर का शरीर भी माता की कुक्षि से ही बाहर आया था। अर्थात् आप लोग जैसे जन्मे, वैसे ही प्रभु भी जन्मे थे।

उनकी विशिष्ट पुण्यवानी होने से शरीर की रचना मे कुछ विशेषता थी, मूल अगो मे कोई परिवर्तन नही था। जन्म लेने के बाद उन्होने माता का दूध पीया और आपने भी माता का दूध पीया। बाद मे जैसे खाना आप खा रहे हैं, वैसा ही उन्होने भी खाया होगा।

दीक्षा लेने के बाद तो भोजन की सरसता भी छूट गई थी। कभी–कभी तो बडी–बडी तपस्या के पारणो मे तीन दिन के बासी उडदो के बाकले थे। वे भी उन्होने ग्रहण किये थे।

यदि आपको कदाचित् तपस्या का पारणा हो या तपस्या का पारणा न हो, वैसे ही आपके सामने उडदो के बाकले रख दे तो क्या आप भोजन कर लेगे? कही क्रोधित तो न हो जाओगे? जहॉ भगवान महावीर ने समभाव की साधना के साथ 3 दिन के बासी बाकलो से भी दीर्घ तपावधि का पारणा कर लिया था वहा उनका ध्यान समीक्षण था। जिन्होने ससार के समस्त पदार्थो को यथार्थता के परिप्रेक्ष्य मे देखा था, जिन्हे पौद्गलिक परिवर्तन का स्पष्ट विज्ञान था, जिनके अणु–अणु मे आनन्द रस की झलक थी, ऐसी शक्ति को कितना ही दबाने का प्रयास किया जाय वह प्रकट हो ही जाती है। इत्र की शीशी का मुँह बन्द हो और आप उसे जेब मे दबाकर बैठ भी जाये तथापि उसकी खुशबू आए बिना नही रहेगी। इसी प्रकार जब काम क्रोध, मद, मोह

की गदगी सर्वथा हट जाती है, आन्तरिक शान्ति का समुद्र प्रवाहित होने लगता है, तो उससे सहज ही जन–मानस प्रभावित होने लगते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रभु के जीवन मे से भी काम, क्रोध, मद, मोह का विलगीकरण हो चुका था। आत्म शाति का निर्झर प्रवाहित होने लगा था, परिणामस्वरूप जन मानस क्षेत्र सरसब्ज होने लगा था। जन मानस ही नही पशु–पक्षी जगत् भी प्रभु के आदर्शमय जीवन से प्रभावित था।

यह सब, देखा जाय तो समीक्षण दृष्टि का ही मूल प्रभाव था। प्रभु ने अपनी दृष्टि इतनी समतामय बना ली थी कि वे सदा समता भाव के साथ अखिल विश्व का ईक्षण–दर्शन करते थे। अच्छी या बुरी वस्तु पर राग–द्वेष उत्पत्ति नही होने देते। समीक्षण पर जोर देते हुए प्रभु ने कहा है–

तम्हा उ मेहावी समिक्ख धम्मं

हे मेघावी धर्म का समीक्षण करो। वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं। अत विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओ के प्रति, चाहे वे जीव रूप मे हो या अजीव रूप मे, उनका सम्यक् प्रकार से, समता के साथ ईक्षण करो। जब इस प्रकार ईक्षण की प्रवृत्ति बढेगी तो अवश्य ही एक दिन सम्पूर्ण विश्व का समीक्षण कर सकोगे। और वह समीक्षण तभी सभव है जब अन्त का निरन्तर सशोधन व समीक्षण चलता रहेगा।

समीक्षण दृष्टि का ज्वलन्त आदर्श

बन्धुओ! जब भव्य आत्मा की दृष्टि क्रमश समीक्षण की प्रकर्षता की ओर बढने लगती है, तब उसके जीवन मे अनुपम प्रकाश की जगमगाहट उभरने लगती है और एक दिन वह परम प्रकर्षता को भी प्राप्त कर लेती है। ऐसे साधक के जीवन का प्रभाव अवश्य ही दूसरे पर पडता है। उसकी दृष्टि इतनी निर्मल एव प्रभावशाली बन जाती है कि सशक्त से सशक्त लोहे की सॉकले भी टूट जाती हैं। क्या उदाहरण दूँ आपको मैं, दूर क्यो जाये, इसी क्रान्तिकारी परम्परा के महान् आचार्य क्रियोद्धारक श्री हुक्मीचन्दजी म सा के जीवन की घटना कुछ इसी रूप मे घटित हुई थी। जब वे विचरण मे रामपुरा गाव मे पधारे थे, तब वहा पहले से ही पूरे गाव मे हैजे का प्रकोप व्याप्त था कि महासाधक के पदार्पण से वह प्रकोप धीरे–धीरे शात होता हुआ पूर्ण शात हो गया। सभी लोग ऐसे महासाधक के सान्निध्य मे आकर जीवन मे धर्म का अभिनव आलोक भरने लगे। इसी शृखला मे गाव की एक बहिन, जिसका

नाम था राजाबाई, वह महासाधक के विशुद्ध सयम से अत्यधिक प्रभावित हो गई, परिणामस्वरूप गृहस्थ जीवन को छोडकर सयम पर्याय मे आने के लिए तत्पर हो गई। पारिवारिक मोह कुछ इसी प्रकार का होता है कि प्रशस्त कार्य मे कही न कही बाधक बन ही जाता है। यही हुआ बहिन राजीबाई के साथ। परिवार के लोगो को जब ज्ञात हुआ कि राजीबाई दीक्षा के लिए तत्पर हो रही है, तो वे अड गए। यहा तक अडे कि बहिन का व्याख्यान मे जाना, गुरुदेव के दर्शन करना आदि सब रोक दिया गया। यही नही, उनके मन मे भय व्याप्त हो गया कि कही यह चली न जाय, उसे घर पर लोह की साकलो मे बाधा गया। देखिये। मोह का परिणाम। भोले लोग समझ नही पाते कि यह बहिन जिस मार्ग पर जा रही है, वह प्रशस्त है, इसकी आत्मा को शाश्वत शाति प्राप्त कराने वाला है तथा हमारे कुल को भी उज्ज्वल करने वाला है। आज के समाज की भी कुछ ऐसी ही स्थिति बनी हुई है। कोई दीक्षा लेने के लिए तैयार होगा तो उसको अन्तराय देने वाले बहुत मिल जायेगे, सहायक बहुत कम मिलेगे।

बहिन राजीबाई की भी स्थिति कुछ ऐसी बन गई थी, लेकिन एक रोज ऐसा प्रसग बना कि महासाधक हुक्मीचन्दजी म सा उसी के घर बेले के पारणे के रोज भिक्षाचर्या के लिए पधारे। यथाविधि भिक्षा लेने के अनन्तर जब आपश्री द्वार की ओर मुडने लगे तो सहज मे ही आपश्री की दृष्टि उस बहिन की बाधी गई लोह की साकलो पर पडी। देखिए। निर्मल दृष्टि का अनूठा प्रभाव। साकले कच्चे सूत की भाति तडातड टूट कर गिर गईं। बहिन बन्धनमुक्त हो गई।

यह एक घटित प्रसग पढने को मिला है। महापुरुषो के जीवन मे ऐसी एक नही, अनेक घटनाए घटित हो जाती हैं। कोई आश्चर्य की बात नही, क्योकि जिसके जीवन मे समीक्षण साधना होती है, जो विश्व के समस्त प्राणियो को त्राण देने वाला होता है, उनके प्रति आत्मीयता का व्यवहार रखने वाला होता है, उसका स्वत ही ऐसा प्रभाव पड जाता है। आज भी उन्ही महासाधक महायोगी के प्रबल तप सयम के प्रभाव से वह क्रान्तिकारी परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है।

आत्मीयता से प्रभावित सिंह

यह तो मैं साधक जीवन की बात कह गया। गृहस्थ जीवन मे रह

कर भी जो व्यक्ति यथाशक्य आत्मीय व्यवहार रखता है, दूसरो के दु खो को दूर करने का प्रयास करता है, दूसरो की रक्षा करता है, तो एक दिन उसकी भी रक्षा होती ही है। बात को स्पष्ट करने के लिए एक रूपक दे देता हूँ–

इग्लैण्ड निवासी एक मनुष्य ने जीवन मे ऐसा अपराध कर लिया था कि परिणामस्वरूप सरकार ने उसके लिए मृत्युदण्ड घोषित कर दिया। जब यह घोषणा उस व्यक्ति ने सुनी तो उसके मन मे विचार आया कि अब मरना तो है ही, तथापि कुछ उपाय किया जाय। यही सोच कर वह मौका पाकर एक दिन पुलिस की पकड–जकड से बाहर होकर जगल मे भाग गया। जगल मे भी उसे बहुत भय लग रहा था, क्योकि पुलिस उसका पीछा कर रही थी। पुलिस की दृष्टि से ओझल होने के लिए वह एक विशाल गुफा मे प्रवेश कर गया।

प्रवेश करते ही उसे ज्ञात हुआ कि गुफा मे एक केशरी सिह बैठा हुआ है, एकदम उसका मस्तिष्क झनझना उठा। सोचा बावडी से निकल कर कुएँ मे आ फसा, वहा पर भी मृत्यु द्वार खटखटा रही थी तो यहा पर भी मोत मुँह फैलाए सामने खडी है। अब मरना तो है ही, यह सोच कर निर्भय होता हुआ वह व्यक्ति शेर के सन्निकट पहुँच गया। इतने पर भी सिह ने उसका कुछ भी प्रतिरोध नही किया। वह अपने स्थान पर ही बैठा रहा। ध्यान से देखने पर उसे मालूम हुआ कि शेर के पैर मे बहुत बडा तीक्ष्ण काटा चुभा हुआ है, परिणामस्वरूप वह चल नहीं पा रहा है, तीव्र वेदना का अनुभव कर रहा है। क्यो न मै मौत के मुख मे जाते–जाते यह परोपकार का काम कर लूँ– यह सोच कर वह और आगे बढा और बडी ही सावधानी के साथ उसके काटे को बाहर निकाल दिया, शेर स्वस्थ हो गया। इसके बाद भी वह व्यक्ति उसके सामने ही खडा रहा तथापि शेर ने उस पर वार नहीं किया, उसे खाया नही, मानो वह कृतज्ञता प्रकट कर रहा था कि तू ने मेरे ऊपर उपकार किया है, मैं तुझे कभी भी खा नही सकता हूँ।

कुछ देर ठहर कर शेर जगल मे चला गया, इधर पुलिस खोज करती हुई वहा पहुँच गई और उस व्यक्ति को पकड कर न्यायालय मे ले गये। इधर शिकारियो ने उस शेर को भी पकड लिया और उसे पिजरे मे वद कर अजायबघर ले गए। शेर को तीन दिन तक भूखा रखा गया था। अपराधी का दुहरा–अपराध होने से उसे भूखे शेर के सामने खाद्य–पदार्थ के रूप मे

फेक दिया गया।

आश्चर्य का विषय तो यह है कि तीन दिन का भूखा शेर, जो भूख के मारे दहाड रहा था, उसी के सामने उसकी खाद्य सामग्री आने पर भी उसे खाता नही, शात हो जाता है और उस व्यक्ति से प्रेम करने लगता है।

दर्शको को बहुत आश्चर्य हुआ। यह शेर क्यो नही खा रहा है, उस व्यक्ति को? खोज करने पर मालूम हुआ कि इस व्यक्ति ने काटा निकाल कर शेर का उपकार किया है, परिणामस्वरूप शेर आज तीन दिन का भूखा होते हुए भी उसे नही खा रहा है। सरकार ने भी उस व्यक्ति को छोड दिया।

ध्यान समीक्षक बनो

बन्धुओ! यह तो एक घटना है, वह यह बतलाती है कि गृहस्थ जीवन मे जब समीक्षण की दृष्टि आ जाय, दूसरे प्राणी के दु खो को भी अपने समान देखने की विशुद्ध दृष्टि आ जाय तो उसे तात्कालिक लाभ ही होता है। उस व्यक्ति ने इतना ही तो किया कि उस शेर के काटे को निकाल दिया। समीक्षण किया इस प्रसग से अपना। परिणाम यह निकला कि वह मौत के मुख से भी बच गया।

यह तो एक व्यक्ति के साथ आत्मीय भावना का परिणाम था। यदि यह आत्मा ससार के समस्त प्राणियो के प्रति भी इस प्रकार की समीक्षण दृष्टि रखे तो उसकी क्या स्थिति बन सकती है, यह आप अपनी मति से विचार कीजिए।

जितने भी तीर्थंकर भगवत होते हैं वे सभी समीक्षण ध्यान की परिपूर्णता लिए हुए होते हैं। इसीलिए उनकी देशना मे सभी प्रकार के हिसक पशु भी अहिसक भावना से भावित रहते हैं। शेर और बकरी का वैर उस समय समाप्त हो जाता है।

सज्जनो! परम शाति की उपलब्धि के लिए जीवन मे परिपूर्ण रूप से समीक्षण की स्थिति लानी होगी।

करुणा-तीक्ष्णता-समीक्षण

- कर्मों का आत्मा से सम्बन्ध
- कर्म–विदारण का रहस्य
- मूल कारण की खोज
- सफलता का रहस्य सकल्पशक्ति
- कर्मों का कर्जा

'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि'

–उत्तराध्ययन सूत्र–4/3

कृत कर्मो का भोग किये बिना आत्मा की मुक्ति नही हो सकती। यह भोग चाहे प्रदेशोदय से हो या विपाकोदय से। अनन्तानन्त आत्माए कर्म से आबद्ध हो, चार गति चौरासी लाख जीव योनियो मे अनादिकाल से परिभ्रमण कर रही हैं। कर्मो का आत्मा से अनादि सम्बन्ध होते हुए भी जीव स्वत के सत्पुरुषार्थ जाग्रत कर कर्मो को आत्मा से समूलत हटा कर परम सुख का वरण कर सकता है, जिस प्रकार मुर्गी एव अडे के, स्वर्ण तथा मिट्टी के अनादि सम्बन्ध को प्रयोग विशेष द्वारा व्यवोच्छिन्न किया जा सकता है।

कर्मबध आत्मा के लिये एक प्रकार का कर्ज है। जब तक इस कर्ज को आत्मा परिपूर्णत नहीं चुकाती, तब तक कर्मो के भार से हल्की नही हो सकती।

मुमुक्षु आत्माओ को कर्म–कर्ज से मुक्त होने के लिये वीतराग प्रणीत सत्पुरुषार्थ को जीवन मे स्थान देना आवश्यक है।

शीतल जिनपति ललित त्रिभगी,
विविध भगी मन मोहे रे ।
करुणा कोमलता तीक्षणता,
उदासीनता सोहे रे ।।शीतल।।

बन्धुओ! सकल वस्तु स्तोम के विज्ञाता दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ भगवान् की स्तुति का प्रसग उपस्थित हुआ है। कवि ने शीतल जिनपति का गुण–कीर्तन बहुत ही विलक्षण प्रकार से किया है।

जिन गुणो की अभिव्यक्ति सशरीर अवस्था मे शीतलनाथ भगवान् मे हुई थी और अशरीर मे भी जो गुण विद्यमान हैं, वे सभी गुण विश्व की प्रत्येक आत्मा मे सत्ता के रूप मे सदा विद्यमान हैं। अन्तर बस इतना ही है कि शीतल भगवान् की आत्मा ने अपने सत्पुरुषार्थ के द्वारा कर्म कलिमल का प्रक्षालन कर आत्मिक गुणो को अभिव्यक्त कर लिया तो अन्य आत्माओ की आत्मिक शक्ति कर्मों से आबद्ध रही हुई है।

प्रत्येक तीर्थंकर मे अनन्त चतुष्टय की अभिव्यक्ति होती है– अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र अनन्त वीर्य। त्रिकालवर्ती लोकगत समस्त वस्तुओ को वे जान लेते है, देख लेते हैं। आत्मा के अनन्त गुणो की अभिव्यक्ति, अनन्त चारित्र की अभिव्यक्ति है। अनन्त शक्ति का स्रोत्र फूट पडना अनन्त वीर्य है। इन अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न शीतल जिनपति का गुणगान कवि ने स्याद्वाद दृष्टिकोण को लक्ष्य मे रखते हुए रहस्यभरी भाषा मे अभिव्यक्त किया है।

करुणा, कोमलता, तीक्ष्णता के साथ उदासीनता की स्थिति भी प्रभु मे बतलाई गई है।

करुणा, कोमलता, तीक्ष्णता, उदासीनता एक–दूसरे के प्रतिपक्षी गुण हैं। जहा करुणा है वहा तीक्ष्णता कैसे? जहा तीक्ष्णता है वहा करुणा कैसे? और जहा करुणा तीक्ष्णता है वहा उदासीनता कैसे हो सकती है ? किन्तु इन विपरीत गुणो का समावेश भी स्याद्वाद दृष्टिकोण से एक ही मे हो जाता है। करुणा से तात्पर्य पर दु ख छेदन से लिया गया है। प्रभु विश्व की समस्त आत्माओ के दु खो को दूर करने के लिये समुद्यत थे। समस्त प्राणियो के हित की भावना उनकी रग–रग मे भरी हुई थी। जिनका विज्ञान समीक्षण परिपूर्ण

था। इसी दृष्टिकोण से उन्हे करुणा–कोमलता से युक्त वर्णित किया है।

कर्म विदारण मे तीक्ष्ण होने से भगवान् मे तीक्ष्णता का गुण बतलाया है।

ससार की प्रत्येक आत्मा कर्म से आबद्ध हो अनादि काल से चली आ रही है। इस कर्म शृखला का सर्वत विदारण जब तक नही किया जाता, तब तक आत्मा की मुक्ति नही हो सकती। आत्मा, कर्म बन्धन मुख्यत कषायो के द्वारा करती है। विश्व का चप्पा–चप्पा कर्म–वर्गणाओ से कुप्पी मे काजल की तरह खचा–खच भरा हुआ है। लोक का एक भी आकाश–प्रदेश ऐसा नही है, जहा कर्म वर्गणाओ का अवस्थान न हो। ये कर्म वर्गणाए, कर्म सज्ञा तब प्राप्त करती हैं, जब आत्मा से सम्बद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार आटा, रोटी या मिष्टान्न की सज्ञा तब पाता है, जब वह उसी रूप मे परिणत हो जाता है। आत्मा कषाय–राग–द्वेष की परिणति के साथ जब शुभ या अशुभ विचार करती है, तब उसमे लोहे चुम्बक की तरह कर्म वर्गणाओ को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति पैदा हो जाती है।

कर्मो का आत्मा से सम्बन्ध

आत्मा के सर्वात्म प्रदेशो मे कर्म वर्गणाए सबद्ध होती हैं चाहे शुभ कर्मो का बन्धन हो या अशुभ कर्मो का, बन्धन सर्वात्म प्रदेशो से होगा। जिस प्रकार उकलते तेल के मध्य मे बडा डाल दिया जाता है तो वह अपने सभी छिद्रो से तेल को ग्रहण करता रहता है। उसी प्रकार आत्मा भी सर्वत्र विद्यमान कर्म वर्गणाओ को एक साथ ग्रहण करती रहती है।

जीव के साथ सबद्ध होकर वे जड कर्म वर्गणाए भी सजीव कहलाने लगती हैं।

इन कर्मो का विभागीकरण मुख्यत चार प्रकार से होता है– प्रकृति बध, स्थिति बध, अनुभाग बध और प्रदेश बध।

कर्मो का अपने–अपने स्वभाव को प्रकृति बध, उनकी नियत समय तक फल देने की शक्ति को स्थिति बध, उस फल मे आने वाली रस की तीव्रता–मदता को अनुभाग बध तथा कर्म दलिको को प्रदेश बध कहते हैं। जैसा कि कर्म सिद्धान्तकारो ने बतलाया है–

स्वभाव प्रकृति प्रोक्त स्थिति कालावधारणम्।

अनुभागो रसो ज्ञेय, प्रदेशो दल सचय ।।

अभी मै कर्म फिलासॉफी को विस्तार से नही समझा रहा हूँ। किन्तु यह सकेत दे रहा हूँ कि जैन दर्शन मे कर्म सिद्धान्त की व्याख्या बहुत गहन, गभीर एव साइटिफिक तरीके से प्रतिपादित है। ऐसी व्याख्या अन्य दर्शनो मे नही मिलती। अन्य दर्शनो मे प्रारब्ध, माया, प्रकृति, वासना आदि शब्दान्तर से कुछ व्याख्या मिलती है, किन्तु वह कर्म की मौलिक विवेचना नही रख पाती।

ऐसे कर्म विदारण का सकेत प्रस्तुत स्तुति मे किया गया है, जिन कर्मों के कारण आत्मा चार–गति, चौरासी लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण कर रही है। जब तक इनका समूलत उच्छेदन नही होगा तब तक आत्मा शाश्वत सुख की अवस्था को प्राप्त नही कर सकती।

कर्म विदारण का रहस्य

'उत्तराध्ययन सूत्र' के 20वे अध्ययन मे अनाथी मुनि का वर्णन आता है। जब वे गृहस्थ अवस्था मे थे, तब उनके अक्षि वेदना बहुत तीव्र हो चुकी थी। परिणामस्वरूप वे छटपटाने लगे। पारिवारिक सदस्य बेचैन हो उठे। उनकी वेदना को दूर करने के लिए धन को पानी की तरह बहाने लगे। वैद्य, हकीम, मत्र–तत्रवादी आने लगे। हर सभव प्रयास किया गया उनकी वेदना को शात करने के लिये किन्तु वह तो द्विगुणित–चतुर्गुणित रूप से बढती ही चली गई। वेदनीय कर्म का प्रबल उदय जो आ चुका था।

कर्म रूपी रोग का विदारण करने के लिये किया गया सारा का सारा बाह्य प्रयास व्यर्थ था। उसका विदारण तो आतरिक उपायो से ही सभव था, वही हुआ। अक्षि वेदना की तीव्रता के समय उनके मन मे बिजली की तरह एक विचार कौंधा– यदि मेरी यह वेदना शात हो जाय तो प्रात अरुणोदय के साथ ही मैं 'खता–दतो निरारभो पव्वइए अणगारिय, शान्त दान्त निरारभी अनगार बन जाऊगा।

रात्रि की नीरवता बढने लगी, ज्यो–ज्यो वातावरण शात होने लगा त्यो–त्यो उनकी वेदना भी शमित होती चली गई। प्रात अरुणोदय के साथ ही सकल्प का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ। उनकी सारी वेदना समाप्त हो गई। पारिवारिक सदस्य चमत्कृत हो उठे। सभी अपनी–अपनी मनौतियो का प्रभाव मानने लगे। किन्तु अनाथी अनगार यह जानते थे कि यह प्रभाव किसका है? यह रोग विदारण की स्थिति कैसे बनी है?

रूपक वहुत लम्बा है तात्पर्य इतना ही है कि कर्मो का विदारण

सिर्फ बाह्य उपायो से नही हो सकता। बल्कि आतरिक दृढ सकल्प का होना भी आवश्यक है। सकल्प मात्र भी जब कर्म–विदारण करने मे इस प्रकार सहायक है तो कर्म–विदारण के तदनुरूप उपायो को अपनाने पर आत्मा निश्चित ही परम सुख की अनुभूति करती है।

तीर्थंकर भगवत शीतलनाथजी ने आत्मा के गुणो का विघात करने वाले सभी कर्मो का तीक्ष्णता के साथ विदारण कर दिया था, उन्होने समीक्षणता की परिपूर्णता को पाया था, इसीलिये उनमे करुणा–कोमलता के साथ ही तीक्ष्णता का गुण भी पाया जाता है।

मूल कारण की खोज

कर्म विदारण किन उपायो से किये जाते हैं, किन कारणो से कर्म बन्धन तथा कर्मोदय की स्थिति बनती है? इन सबका परिज्ञान करते हुए कर्म–बन्धन के मूल कारणो पर प्रहार करना चाहिये। जब तक कर्म–बन्धन के मूल–भूत कारणो पर प्रहार नही किया जायेगा, तब तक कर्मो का समूलत नाश नही हो सकता। वनस्पतियो मे आपने 'रजका' नाम सुना होगा। रजका के बोने के बाद जब वह बडा होता है, तब कृषक इसे ऊपर–ऊपर से काट लेते हैं। कटने के बाद भी वह कुछ ही दिनों के बाद पानी आदि के मिलने पर पुन लहलहाने लगता है, क्योकि उसकी जड नहीं काटी गई है। जब तक जड का उच्छेदन नही होगा, तब तक ऊपर से कितना ही काट लिया जाय फसल पुन खडी हो जायगी। यह स्थिति हर क्षेत्र मे होती है। रोग को दूर करने के लिये भी जब तक रोगोत्पत्ति के मूलभूत कारणो को नही हटाया जाएगा, तब तक रोग समूलत नष्ट नही हो सकता। कर्म का विदारण भी समूलत जब तक नही होगा, तब तक कर्म–बन्धन की प्रक्रिया भी चलती रहेगी। अपुनर्भाव से कर्मोच्छेदन के लिये त्रियोग समन्वित सयम तथा समीक्षण दृष्टि की अनिवार्य आवश्यकता है।

इस प्रकार का सयमीय जीवन अनगारी अवस्था मे ही अपनाया जा सकता है। अनगार से तात्पर्य जिसके कोई घर न हो। कल वहा देखे थे तो आज यहा हैं। आज यहा हैं तो कल कही और स्थान पर चले जायेगे। इस प्रकार की वृत्ति वाले साधक को अनगार कहा गया है। इस प्रकार से विचरण करने वाला अनगारी साधक, कर्मोत्पत्ति के मूलभूत कारणो पर प्रहार करता हुआ उन्हें आत्मा से समूलत उखाड फेकता है। जब रजके को मूल सहित

काट देते है, तब वह पुन नही उगता। उसी प्रकार साधक जब कर्मों का समूलत छेदन कर देते है, तब आत्मा के साथ उन कर्मो का पुन कभी भी बन्धन नहीं होता। वे कर्म आत्मा से सदा–सर्वदा के लिये अपुनर्भाव से विलग हो जाते हैं। तीर्थंकर भगवन्त समूलत ही कर्म–छेदन करते हैं। जिससे कभी भी उनके कर्मों का बन्धन पुन नही होता है। शीतल जिनपति ने भी जिस रत्नत्रय रूप आराधना की, तीक्ष्णता के साथ कर्म–छेदन किया था, जिससे वे उनकी आत्मा से सदा–सर्वदा के लिये विलग हो चुके थे।

सफलता का रहस्य . संकल्पशक्ति

कर्म प्रणाश और आत्मा की परिपूर्ण शुद्धि के लिये सत्सकल्प शक्ति का मजबूत होना आवश्यक है। चाहे कितना ही दु साध्य कार्य हो, यदि मानव की सकल्प शक्ति दृढ है तो निश्चित ही कार्य की सपूर्ति होती है। सकल्प शक्ति इतनी मजबूत होनी चाहिये कि 'कार्यं वा साधयामि देह वा पातयामि'– कार्य को सिद्ध कर लूगा या शरीर का उच्छेदन कर दूगा। इस दृढ सकल्प के साथ साधना के पथ पर समीक्षण दृष्टि के साथ बढने वाला साधक निश्चित ही लक्ष्य की प्राप्ति करता है। दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ भगवान् ने यह दृढ निश्चय किया था कि मुझे निश्चित रूप से कर्मो का आत्मा से विलगीकरण करना है। इसी दृढ सकल्प के साथ वे साधना के पथ पर समीक्षण दृष्टि के साथ, दृढता के साथ बढते चले गए। रत्नत्रय रूप आराधना विशुद्ध, विशुद्धतर, विशुद्धतम बनती चली गई। यही विशुद्धतम अवस्था इतनी तीक्ष्ण बनी कि वह कर्म की सुदीर्घ परम्परा को नष्ट करने मे समर्थ हो गई। प्रभु ने लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया। प्रभु ने शीतलता ही नही परम शीतलता प्राप्त कर ली। वे शात–प्रशात अवस्था मे लवलीन हो गए। आत्मा की चरम परिणति, शीतलता अर्थात् परिपूर्ण शात–प्रशात अवस्था प्राप्त करना है।

कर्मो का कर्जा

समय का परिपाक होने पर निश्चित रूप से कर्म का उदय आत्मा पर होता है। प्रदेशोदय या विपाकोदय, चाहे किसी प्रकार से हो। कर्म को भोगे बिना आत्मा की इस कर्म से मुक्ति नही हो सकती। 'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि" –कृतकर्म से भोग के विना मुक्ति नही हो सकती। कर्म का आत्मा से अनादि सम्बन्ध होते हुए भी आत्मा सत्पुरुषार्थ के वल से उसे

विलग कर सकती है। जिस प्रकार कि मुर्गी एव अण्डे, स्वर्ण और मिट्टी के अनादि सम्बन्ध को प्रयोग विशेष द्वारा व्यवच्छिन्न किया जा सकता है। आत्मा के लिये कर्म भी एक कर्ज है। जिस प्रकार कर्जदारो मे वह व्यक्ति श्रेष्ठ होता हे जो अपने पास धन–सम्पत्ति के सुलभ होने पर निश्चित सीमा से पहले ही कर्ज चुका दे जिससे वह शीघ्र ही उस कर्ज से हल्का हो जाय। ठीक उसी प्रकार आत्मा पर जो कर्ज है, उसे सुज्ञ आत्मा शीघ्र ही चुकाने का प्रयत्न करे। मानव तन, स्वस्थता, जिन–धर्म का सुयोग आदि दुर्लभ वस्तुए प्राप्त हैं– ऐसे सुयोग मे पूर्वबद्ध कर्मो को निर्जरित करने के लिये प्रयास करना चाहिये। आत्म–शक्ति की तीक्ष्णता होने पर ही कर्म का कर्ज चुकाया जा सकता है। उस कर्मों के कर्ज को चुकाने के लिये सत्पुरुषार्थशील बनना चाहिये। आज का पुरुषार्थ निश्चित ही पूर्व के गृहीत कर्म–कर्ज को चुकाने मे समर्थ होगा, साथ ही रत्नत्रय की शुभाराधना रूप तीक्ष्णता से आने वाला कर्म–बन्धन का कर्ज भी रुक जाएगा। आत्मा कर्मो से हल्की होती चली जाएगी। अन्तत वह भी अपुनर्भाव से कर्म–कर्ज से विमुक्त हो जाएगी।

इस प्रकार परस्पर विरुद्ध लगने वाले करुणा, कोमलता एव तीक्ष्णता रूप गुण भी शीतल जिनपति मे पाये गये। कवि ने तीसरा गुण उदासीनता रूप गुण बतलाया है। उन तीनो को सम्मिलित कर गुणो की ललित त्रिभगी बतलाई है। उदासीनता रूप गुण की व्याख्या भी समय पर उपस्थित करने का विचार है।

कर्मो का विनाश करने वाले प्रत्येक जिज्ञासु को समीक्षण दृष्टि के साथ साधना पथ पर चलना होगा। समीक्षण दृष्टि के माध्यम से ही आत्मा के परस्पर विरुद्ध गुण, कोमलता और तीक्ष्णता का सही सामजस्य बन पाता है। समीक्षण ही जीवन के काषायिक ऊबड–खाबड पथ को सपाट बनाने वाला होता है। अर्थात् जीवन का सही स्वरूप उजागर करने वाला होता है। जीवन के प्रत्येक कार्य मे, हर गतिविधि मे समीक्षण दृष्टि होना आवश्यक है। समीक्षण की परिपूर्णता ही आत्मा से परमात्मा रूप की अभिव्यक्ति है।

OOO

करुणा बनाम अभय

- ☛ सर्वश्रेष्ठ दान अभय
- ☛ मृत्यु की वेदी पर
- ☛ रानियो का वरदान
- ☛ वरदान से जीवन दान
- ☛ रानियो को ईर्ष्या छोटी रानी से
- ☛ अभय दान की सर्वश्रेष्ठता
- ☛ अभय प्रदाता शीतल प्रभु
- ☛ अभय दान से तीर्थंकरत्व प्राप्ति

"दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाण"

—सूत्रकृताग सूत्र 1/6/23

सभी दानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ दान है। आहार दान, ज्ञान दान, औषध दान भी अपने—अपने स्थान पर उपयोगी हैं, किन्तु इन सभी दानो का आधारभूत अभय दान है। मृत्यु के भय से आतकित व्यक्ति को कितना ही आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान दिया जाय, तथापि उसे शाति नहीं मिल सकती। अत मृत्यु के भय से आतकित व्यक्ति को निर्भय बनाने वाला अभय दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है।

जब जीव ससार की समस्त आत्माओ के साथ अपना आत्मीय व्यवहार रखता है, प्रत्येक प्राणी के प्रति करुणावत बना रहता है, तब उसकी यह आत्मीय भावना स्वय के परमात्म स्वरूप को उजागर करने मे सहायक होती है।

"अभय दान" अभय दान—गृहीता को तो अभयी बनाता ही है, किन्तु प्रदाता के कर्म—निर्जरा एव पुण्यार्जन मे हेतु बनता है।

अभय दान तभी दिया जायेगा जब दृष्टि समीक्षण बनेगी।

शीतल जिनपति ललित त्रिभगी
विविध भगी मन मोहे रे।
करुणा–कोमलता–तीक्षणता
उदासीनता सोहे रे।।शीतल।।

अनन्त कृपालु शीतलनाथ भगवान् की स्तुति का प्रसग चल रहा है। कवि ने शीतल जिनपति के अनन्त–अनन्त गुणो मे से मुख्यतया तीन गुणो का चयन कर उनकी सक्षिप्त व्याख्या स्तुति के रूप मे प्रस्तुत की है।

गुणो की त्रिभगी मे प्रथम गुण करुणा का लिया गया है। शीतल भगवान् परम करुणावत थे। करुणा को विविध आयामो, विविध परिप्रेक्ष्यो द्वारा विविध रूपो मे देखा जा सकता है। करुणा को अनुकम्पा अहिसा के रूप मे भी लिया जा सकता है। भगवान् समस्त प्राणियो के प्रति परम करुणावत थे। उनकी ओर से समस्त प्राणी वर्ग निर्भय थे। वे सभी को अभय देने वाले थे। इसीलिये जिनेश्वर का गुण कीर्तन करते हुए 'शक्रस्तव' मे 'अभय दयाण' अभय दाता के रूप मे भी प्रभु को सम्बोधित किया है।

कवि ने भी कहा है– 'अभय दान तेमलक्षय करुणा'

सर्वश्रेष्ठ दान-अभय

मुख्यतया दान के चार प्रकार किये जा सकते हैं– आहार दान, ओषध दान, ज्ञान दान, अभय दान। शुभ भाव से अन्नादि का दान आहार दान है। रुग्ण व्यक्ति के रोग को दूर करने के लिये औषध देना औषध दान है। अबोध व्यक्ति को सही बोध कराना ज्ञान दान है। भयभीत अर्थात् मृत्यु आदि के भय से आतकित प्राणी को निर्भय बना देना, अभय दान है।

यद्यपि चारो प्रकार के दानो की अपनी–अपनी यथास्थान उपादेयता है तथापि अभय दान को चारो ही प्रकार के दानो मे सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादित किया गया है– जैसा कि 'सूत्रकृताग सूत्र' के प्रथम श्रुत–स्कध के वीर स्तुति नामक अध्ययन मे बतलाया है–

'दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण'

सभी दानो मे अभय दान श्रेष्ठ है। अन्न का अक्षय कोष हो, विविध प्रकार की दवाओ का भण्डार हो, प्रकाण्ड विद्वत्ता हो किन्तु यदि व्यक्ति मृत्यु

के भय से भयभीत है तो उपर्युक्त वस्तुए उसके लिये उपयोगी नही बनती।

कितना ही ऐश्वर्यशाली पुरुष हो, खाने के लिये अच्छे से अच्छा मिष्टान्न हो, सब प्रकार की भौतिक सुख–सामग्री उपलब्ध हो, किन्तु यदि मृत्यु का भय उसके मस्तिष्क मे मडरा रहा हो तो ससार की कोई भी वस्तु उसे शाति प्राप्त नही करा सकती। जब तक वह मृत्यु के भय से मुक्त नही बन जाता, तब तक उसकी अशान्तता, शारीरिक–मानसिक रोग–रुग्णता बढती ही चली जाती है।

मृत्यु की वेदी पर

इस बात को एक छोटे–से रूपक द्वारा समझा जा सकता है– राजा अरिमर्दन के राज्य मे एक चोर चोरी के अक्षम्य अपराध मे पकडा गया। प्राचीन युग के राजा अपराधियो को दण्ड देने मे प्राय बहुत कठोर होते थे, जिससे भविष्य मे दूसरा व्यक्ति वैसा अपराध करने का दुस्साहस नही कर सके। राजा अरिमर्दन भी इसका अपवाद नही था। चोर के पकडे जाने पर जब उसे राजा के समक्ष उपस्थित किया गया तो राजा अरिमर्दन ने सारी स्थिति को समझते हुए अपराधी को दण्ड के रूप मे मृत्यु की सजा का आदेश दिया।

उस समय की परम्परा के अनुसार अपराधी का मुँह काला किया गया, गधे पर बिठाया गया, डिण्डिम नाद के साथ राजपुरुष शहर के मुख्य मार्गो मे इस घोषणा के साथ घुमाने लगे– "इस व्यक्ति ने राज्य–विरुद्ध चोरी का निन्दनीय अपराध किया। इसी अपराध के कारण इसे मृत्यु दण्ड की सजा दी जा रही है। जो कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के निन्दनीय अपराध को करेगा उसे भी इसी प्रकार दण्डित किया जाएगा।"

इस प्रकार की घोषणा करते हुए राजपुरुष जब उसे राजमहलो के पास से ले जा रहे थे उस समय चारो रानियो के साथ राजा अरिमर्दन वातायन मे बैठा नगर की शोभा निहार रहा था। रानियो ने जब राजपथ पर किसी अपराधी को ले जाते हुए देखा तो राजा से पूछा– "प्राणेश्वर! इस व्यक्ति को किस अपराध मे मृत्यु दण्ड दिया जा रहा है?"

राजा ने बतलाया– "प्रिये! इसने चोरी जैसा जघन्य कर्म कर राज्य की जनता को बहुत उत्पीडित किया है। इसी अपराध मे इसे दण्डित किया जा रहा है।"

रानियो का वरदान

चारो ही रानिया उसकी दीन दशा देख कर द्रवित हो उठीं और उसे बचाने का उपाय सोचने लगी। इतने मे ही उन्हे राजा द्वारा दिए गए वरदान की बात याद आ गई।

सबसे बडी रानी ने राजा द्वारा दिये गये वरदान की याद दिलाते हुए कहा कि "प्राणेश्वर! आज उस वरदान का अवसर आ गया है, आप मेरी भावना पूरी करिये।"

"बोलो–बोलो प्रिये! तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं अपने वरदान के अनुसार तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिए तत्पर हूँ।" राजा की इस बात को सुन कर रानी ने कहा– "प्राणेश्वर! एक दिन–रात के लिए आप इस अपराधी की मृत्यु की सजा रोक कर इसे मेरे सुपुर्द कर दीजिये।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

राजा के आदेश को पाकर राजपुरुषो ने एक दिन के लिये अपराधी को सबसे बडी रानी के सुपुर्द कर दिया। रानी ने अपराधी चोर को मनोज्ञ भोजन करा कर एक हजार स्वर्ण मुद्राए देकर तुष्ट किया। एक दिन–रात के लिये बडी रानी ने अपराधी की मृत्यु बचा ली। अपराधी ने रानी के प्रति बहुत कृतज्ञता ज्ञापित की। बहुत–बहुत आभार प्रदर्शित किया।

बडी रानी की प्रशसा सुन कर दूसरी रानी के मन मे भी अपनी प्रशसा करवाने की इच्छा बलवती हो उठी। उसने भी अनुकूल अवसर देख कर राजा से अपना वरदान माग ही लिया और एक दिन के लिये उसने चोर की प्राण रक्षा की और उसे अच्छा खाना खिला कर पाच हजार स्वर्ण मुद्राए प्रदान कर तुष्ट किया। चोर ने दूसरी रानी के प्रति भी आभार प्रदर्शित किया। तीसरी रानी भी यह अवसर कब चूकने वाली थी। उसने भी राजा को अपना वरदान याद दिला कर चोर को एक दिन के लिए निर्भय बना दिया। उसे अच्छा खिलाया–पिलाया और दस हजार स्वर्ण मुद्राए प्रदान की। चोर ने तीसरी रानी का भी गुणानुवाद गाया और उसके प्रति भी अपना आभार ज्ञापित किया।

वरदान से जीवन दान

चोथी रानी को भी यह अवसर अनुकूल लगा। उसने भी राजा को

अपने वरदान की याद दिला कर चोर को अपने पास बुलाया और कहा– "चौर्य कर्म बहुत ही निन्दनीय है, इसी कारण आज तुम्हे मृत्यु दण्ड मिल रहा है। बोल तू क्या चाहता है? जीना चाहता है या मरना ही?" चोर तत्काल बोल उठा– "महादेवी ! मुझे और कुछ नहीं चाहिये, केवल जीवन–जीवन– जीवन। मैं तुम्हारे चरणो मे गिरता हू, मुझे बचा लो, जन्म–जन्म तक मैं आपका उपकार नही भूलूगा। बस, मुझे बचा लो।"

छोटी रानी ने कहा– "मैं तुम्हे बस एक ही शर्त पर बचा सकती हू– तुम यह निन्दनीय कार्य सदा–सदा के लिए छोड दो।"

"हे अम्बे! मैं तैयार हू। अब कभी भी ऐसा कार्य नही करूगा– जो राज्य–विरुद्ध होगा। शिष्टता एव सभ्यता के साथ रहूगा। बस, तुम मुझे बचालो। डूबते हुए को उबार लो।"

महारानी ने चोर को आश्वासन दिया, और सम्राट के पास पहुची– बोली, "प्राणेश्वर! राज्य का दण्ड विधान दोषो का नाश करने के लिए है या दोषियो का नाश करने के लिए है?"

सम्राट ने कहा– "महारानी! दण्ड का सविधान तो दोषो का नाश करने के लिए है।"

"तो बस राजन्! अब मुझे आपके द्वारा दिए वरदान से और कुछ नही चाहिए– चोर को मृत्यु दण्ड मत दीजिए, उसे जीवन दान दे दीजिए।"

सम्राट अवाक् रह गया, बोला– "देवी! तुम यह क्या कह रही हो? क्या मै उस भयकर दुर्दान्त चोर को छोड दू जिसे पकडने मे कितना समय लगा था? इसे छोडने पर देश की जनता क्या कहेगी? सोचो रानी! यह गम्भीर विषय है, तुम और कुछ माग लो।"

रानी ने कहा– "राजन्! मैंने बहुत सोच–समझ कर वर मागा है। उस अपराधी ने सदा–सदा के लिए निद्य कर्म का त्याग कर दिया है अत आप उसे बचा लीजिए।"

प्रतिज्ञा के अनुसार राजा ने चोर को निर्भय कर दिया। अब तो चोर मुक्तकण्ठ से छोटी रानी की प्रशसा करने लगा। पूरे नगर मे छोटी रानी की चर्चा होने लगी। नागरिक भी प्रशसा करने लगे।

रानियों की ईर्ष्या छोटी रानी से

यह चर्चा जब तीनो रानियो ने सुनी तो ईर्ष्या से दग्ध हो उठीं। अरे! इसने चोर को दिया ही क्या है– हमने तो उसे बहुत सारी स्वर्ण मुद्राए दीं, फिर भी लोग उसी की प्रशसा कर रहे है। हमारी तो कोई चर्चा ही नहीं करता। जब कि हमारा दान सबसे ज्यादा दान था। बडी रानी ने कहा– मैंने उसे एक हजार स्वर्ण मुद्राए दी। दूसरी ने कहा– मैंने उसे तुम्हारे से भी अधिक पाच हजार स्वर्ण मुद्राए दी। तीसरी ने कहा– अरे! मैने तो तुम्हारे से भी अधिक दस हजार स्वर्ण मुद्राए दी हैं। जब कि चौथी रानी ने कुछ नही दिया– फिर भी जनता उसी की प्रशसा कर रही है। सम्राट से अवश्य इसका निर्णय कराना चाहिए– किसका दान सर्वश्रेष्ठ दान है?

बधुओ! देखिए ईर्ष्या का परिणाम। मानव जब ईर्ष्यालु बन जाता है तब अपने विवेक–चक्षु खो बैठता है। बस, सदा अपनी आत्म–प्रशसा का ही इच्छुक बना रहता है। दूसरो की सच्ची प्रशसा एव उनके गुणो का विकास उसे फूटी आख भी नही सुहाता। ईर्ष्या दग्ध मानस हित–अहित के विचार की क्षमता को खो बैठता है। किसी व्यक्ति की उन्नति को देख कर जल–भुन उठता है। उन्नतिशील व्यक्ति का पतन कैसे किया जाय, बस इसी की उधेड–बुन मे वह जिन्दगी के अमूल्य क्षणो को खो बैठता है। ईर्ष्या–दग्ध मानस कभी भी अपनी उन्नति नहीं कर सकता, आत्मविकास का तो कोई प्रश्न ही नही उठता।

सुज्ञ चिन्तको को सदा दूसरो की उन्नति मे 'गुणिषु प्रमोद' प्रमोद भाव होना चाहिये। आत्मविकास के लिये साधक का चिन्तन स्वपरानुप्रेक्षी होना चाहिये। दूसरो की उन्नति को देख कर यह सोचना चाहिये कि यह भी बढे और मैं भी बढू। मैं भी अपने मे ऐसे–ऐसे गुणो का निष्पादन करू, जिनसे मेरी भी उन्नति हो। इस प्रकार से सोचने वाला साधक ही आत्मविकास की दिशा मे प्रगतिशील बनता है।

किन्तु वे ईर्ष्या–दग्ध तीनो महारानिया छोटी रानी की प्रशसा सहन नही कर पाई और किसका कार्य सर्वश्रेष्ठ है, इसका निर्णय लेने के लिये तीनो मिल कर सम्राट के निजी कक्ष मे पहुची। तीनो को एक साथ देख कर सम्राट अवाक् रह गया! बोला– "क्या चाहती हो? किसलिये तीनो का एक साथ मिल कर यहा आना हुआ है?"

बडी महारानी ने तीनो की समस्या सामने रखी और दान की सर्वश्रेष्ठता का निर्णय करने के लिये निवेदन प्रस्तुत किया।

अभय दान की सर्वश्रेष्ठता

सम्राट स्वय विचार मे पड गये– सोचने लगे– यद्यपि छोटी रानी का दान कार्य ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु निर्णय मैं दूगा तो ये सोच बैठेगी कि मैंने इसका पक्ष लिया है। अच्छा हो, चोर इस बात का निर्णय दे। यह सोच कर सम्राट ने कहा– "आपकी बात विमर्शनीय है। इसका निर्णय मै दू, इससे श्रेष्ठ तो यह होगा कि स्वय चोर ही इस बात का निर्णय दे कि उसे वास्तव मे किसने सर्वश्रेष्ठ दान दिया है।" तीनो रानिया मान गईं। सभी के समक्ष चोर को बुलाया गया और कहा गया कि बोलो– "इन चारो रानियो मे से सबसे अधिक दान तुम्हे किसने दिया?"

सम्राट की बात सुन कर चोर विस्मय मे पड गया फिर भी उसे कुछ तो कहना ही था– बोला– "राजन्! बडी रानी का भी महान् उपकार है। इन्होने मुझे एक दिन का जीवन दान दिया, साथ ही एक हजार स्वर्ण मुद्राए भी। इसी प्रकार दूसरी व तीसरी रानीजी का भी बहुत उपकार है, इन्होने भी क्रमश एक–एक दिन का जीवन दान तथा पाच व दस हजार स्वर्ण मुद्राए भी प्रदान की। इनका उपकार भी मै नही भूल सकता। किन्तु राजन्! चौथी रानी का उपकार तो अनन्य है। इनके दान के लिये तो मेरे पास कहने योग्य कोई शब्द ही नही है। तीनो रानियो ने यद्यपि मेरा रक्षण– सत्कार–सम्मान एव स्वर्ण मुद्राओ का दान दिया, किन्तु फिर भी मेरा मन अशान्त एव उद्विग्न ही बना रहा। मुझे मानसिक शान्ति बिल्कुल नही मिल पाई क्योकि राजन्! अन्तत तो मेरे मस्तिष्क पर मृत्यु ही मडरा रही थी। किन्तु जब चौथी रानी ने मुझे अभय कर दिया, मृत्यु का भय–चक्र मेरे मस्तिष्क से हटा दिया तो मेरा तन–बदन अत्यधिक परितोष को प्राप्त हुआ। यद्यपि छोटी रानी ने मुझे धन के रूप मे कुछ भी नही दिया, लेकिन निर्भयता का जो महान् दान दिया उसके सामने ससार की सम्पूर्ण वस्तुए तुच्छ है। अत हे राजन्! छोटी महारानी का दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है।"

बन्धुओ! यह तो एक घटना क्रम मैं आपके सामने रख गया। घटना चाहे किसी भी रूप मे घटी हो या नही किन्तु इस घटना से यह शाश्वत सन्देश मिलता है कि ससार के समस्त प्राणी अपना जीवन चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। अत मृत्यु के भय से जिसे निर्भय किया जाता है, उसकी आत्मा परम सतोष को प्राप्त होती है। इसीलिए अभय दान ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

अभय प्रदाता शीतल प्रभु

शीतलनाथ भगवान् ने जगत के त्रस, स्थावर आदि समस्त प्राणियो को अभय दान दिया था। वे सभी के प्रति असीम करुणावत थे। उनकी ओर से जगत के समस्त प्राणी निर्भय थे। इसीलिये कवि द्वारा प्रतिपादित गुणो मे से करुणा के अन्तर्गत अभय का भी ग्रहण होता है।

करुणा की व्याख्या करते हुए कवि ने भी स्पष्ट शब्दो मे कहा है–

सर्व जन्तु हितकरणी करुणा।

करुणा से तात्पर्य समस्त जन्तुओ का हित करना है। जिस प्राणी का विश्व की समस्त आत्माओ के प्रति आत्मीय भाव रहा हुआ है। जो अपने ही दु ख के समान विश्व की समस्त आत्माओ के दु ख को समझता है अर्थात् जिस प्रतिकूल सामग्री से मुझे दु ख होता है, उसी सामग्री से अन्य आत्माओ को भी दु ख होता होगा– इस प्रकार की समीक्षण दृष्टि को लेकर चलने वाली आत्मा कभी भी, किसी भी जीव का हनन नही कर सकती। तीर्थंकर भगवन्त इसी आत्मीय भावना से सम्पन्न होते हैं। उनकी रग–रग जीवो के प्रति परम करुणा से अनुस्यूत होती है।

शीतल जिनपति के करुणा गुण को लक्ष्य मे रखते हुए आत्मविकास के अभीप्सु मानवो को अपने से छोटे–बडे समस्त प्राणियो के प्रति करुणावत बनना चाहिये अर्थात् समीक्षण दृष्टि बनानी चाहिये।

अभय दान से तीर्थंकरत्व प्राप्ति

समस्त प्राणियो के प्रति अनुकम्पा रखते हुए करुणा की उत्कर्ष भावना आने पर आत्मा तीर्थंकर नामकर्म जैसी परम प्रकर्ष पुण्य प्रकृति का बधन कर सकती है। क्योकि अभय दान–सुपात्र दान देता हुआ जीव कर्मो को कोटि–कोटि खपाए और उत्कृष्ट रसायन आवे तो तीर्थंकर नामरूप प्रकृति का बधन करे। इस अभय दान–सुपात्र दान के माध्यम से कई आत्माओ ने तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति पूर्व मे भी बधन की है, भविष्य मे भी करेगे और वर्तमान मे भी कर रहे हैं।

अन्तत सभी मुमुक्षु आत्माये शीतल जिनपति की स्तुति के प्रसग से जगतवर्ती आत्माओ के प्रति करुणावत बनने का प्रयास करेगी, तो एक न एक दिन अपनी आत्मा को गुणों से विकसित करती हुई परम स्वरूप का वरण कर लेगी।

यही मगल कामना है।

○○○

करुणा के तीन रूप

- छद्मस्थो के लिये आदर्श वीतरागी
- सर्व जन्तु हितकारिणी करुणा
- पर–दु ख छेदन–इच्छा करुणा
- अभयदान ते मल क्षय करुणा
- बाह्य मल क्या है?
- आन्तरिक मल क्या है?
- स्वच्छता विदेशो मे
- ऑखो देखा हाल
- स्वच्छता का परम प्रतीक–साधु जीवन
- करुणा से परम लक्ष्य की प्राप्ति

सव्वेसिं जीवियं पिय

आचाराग सूत्र 1, 2, 3

ससार के समस्त प्राणियो को जीवन प्रिय है। मरना कोई नही चाहता, सभी जीना चाहते हैं। समस्त चराचर प्राणियो की रक्षा करना करुणा है। करुणावत साधक अखिल प्राणियो के दु खो को दूर करने की नि स्वार्थ भावना वाले होते हैं। यह भावना स्वय के कर्म रूपी मल को दूर करने वाली बनती है।

जिस प्रकार प्रकाशमान हीरा रजकण द्वारा मलिन हो जाता है। चमकता गोल्ड (सोना) मिट्टी के कारण मलीमष बन जाता हे। इसी प्रकार अनन्त–अनन्त गुणो से सम्पन्न आत्मा भी कर्मो के मल से मलीमष बन जाती है। इसका स्वाभाविक रूप विकृत बन जाता है। इस विकृत रूप को हटाने मे समस्त प्राणियो के प्रति रखी जाने वाली करुणा अत्यधिक सहायक बनती है। नि स्वार्थ करुणा भाव की चरम परिणति ही परमात्म भाव को उजागर करती है।

शीतल जिनपति ललित त्रिभगी,
विविध भगी मन मोहे रे।
करुणा कोमलता तीखणता,
उदासीनता सोहे रे।।

आत्मा के विविध गुणो का बोध प्राप्त करने के लिये तीर्थंकर भगवतो के गुण–स्मरण का प्रसग चल रहा है। महापुरुषो का गुण–कीर्तन हम इसलिये न करे कि वे हमारे पर प्रसन्न हो, खुश होकर हमे भौतिक सुख प्रदान कर दे व कर्म बन्धन से विमुक्त कर मुक्ति की प्राप्ति करवा दे। वे महापुरुष तो हमारे लिये आदर्शभूत होते हैं, उन्हे निमित्त बनाकर स्व के पुरुषार्थ से ही आत्मा, कर्म–मुक्ति की दिशा मे प्रगतिशील बन सकती है। कोई भी अरिहत या सिद्ध भगवत किसी भी मुमुक्षु आत्मा के द्वारा गुणानुवाद करने पर कभी भी प्रसन्न नहीं होते और न ही किसी अवगुणी व्यक्ति के द्वारा निन्दा करने पर नाराज होते हैं। वे वीतरागी होते हैं। उन्हे किसी पर भी राग या द्वेष नहीं होता।

छद्मस्थों के लिये आदर्श : वीतरागी

ऐसे वीतरागी महापुरुषो की गुण स्तवना स्वात्मीय जीवन को आलोकित करने मे सहायक होती है। सिद्धान्त की दृष्टि से जिस प्रकार धर्मास्तिकाय तत्त्व गति–क्रिया मे सहायक होता है। गति सहायक तत्त्व की खोज मे अब तक का वैज्ञानिक अनुसधान 'ईथर' के नाम से सामने आया। यह तत्त्व सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है। जब भी कोई प्राणी गति–क्रिया करता है तो वह गति–क्रिया होती तो स्वय के पुरुषार्थ से है किन्तु उस गति–क्रिया मे धर्मास्तिकाय द्रव्य सहायक होता है।

इसी प्रकार भव्य आत्माओ के विकास मे आदर्श रूप मे सिद्ध भगवत आदि लोकोत्तर महापुरुष सहायक बन जाते हैं। अरिहत आदि महापुरुष तो उपदेशादि के माध्यम से भी भव्यात्माओ को प्रतिबोधित करने मे सहायक बनते हैं किन्तु सिद्ध भगवत तो मात्र आदर्श के रूप मे भव्य आत्माओ के लिये स्व के आत्मीय गुणो को व्यक्त करने मे सहायक रूप बनते हैं। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिये एक व्यावहारिक रूपक भी लिया जा सकता है।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति आईने मे अपना मुँह देखता है और जब उसे अपने चेहरे पर काला धब्बा दिखलाई देता है तो उस धब्बे को वह अपने

ही पुरुषार्थ द्वारा हटाकर चेहरे को स्वच्छ बना लेता है। आईना उसमे मात्र सहायक होता है। मूलत तो धब्बे को हटाने का प्रयास स्वय को ही करना पडता है। इसी प्रकार आईने की तरह आदर्श रूप मे सिद्ध एव अरिहत भगवान अपनी आत्मा पर लगे हुए कर्म रूप काले धब्बे को हटाने मे सहायक बनते हैं।

भव्य आत्माए उनके आदर्श रूप जीवन के साथ जब अपनी आत्मा का तुलनात्मक अध्ययन करती है तो उन्हे कर्म का काला धब्बा स्पष्ट नजर आ जाता है– जो कर्म आत्मगुणो को मलीमष बनाते है और जीव के ऊर्ध्वारोहण मे अवरोधक बनते है, साधना की उच्चतम श्रेणियो पर पहुँचने के लिये ऐसे कर्ममल का आत्मा से प्रक्षालित होना आवश्यक है।

सर्व जन्तु हितकरणी करुणा

गत चौबीसी मे हुए सभी तीर्थंकर भगवन्त मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। अत उनका गुण–स्मरण अरिहत–सिद्ध दोनो प्रकार से किया जा सकता है।

शीतलनाथ भगवान् के गुणो का प्रसग जो आपके समक्ष चल रहा है– उसमे भी मुख्यत तीन गुणो की स्तवना कवि ने प्रस्तुत की है। उन गुण, रूप, ललित त्रिभगी की व्याख्या भी कवि ने मुख्यतया तीन–तीन प्रकार से की है।

करुणा की प्रथम व्याख्या कवि ने इस प्रकार की है–

'सर्व जन्तु हितकरणी करुणा'

वीतराग देव की वृत्ति जगत् के समस्त चराचर प्राणियो का हित करने वाली होती है। यहा तक कि तीर्थंकर भगवतो की देशना भी समस्त प्राणियो के हित एव सुख के लिये ही होती है। जैसा कि प्रश्न–व्याकरण सूत्र मे बतलाया है–

सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए पावयण भगवया सुकहियं

समस्त जगत् के जीवो का रक्षण करने के लिये भगवन् के द्वारा प्रवचन प्रवेदित किया गया। समस्त प्राणियो के हित रूप वृत्ति वाले होने से भगवान् करुणावत थे। उनकी हर गतिविधि जीव–रक्षण रूप कोमलता से युक्त थी। यह करुणा की प्रथम व्याख्या है।

पर-दुःख छेदन-इच्छा करुणा

कवि ने करुणा की दूसरी व्याख्या इस प्रकार की है– 'पर–दु ख छेदन–इच्छा करुणा।'

इससे तात्पर्य यह है कि भगवान् समस्त जीवो को दु खो से उपरत करने की विशुद्ध इच्छा वाले थे। क्योकि ससार के समस्त प्राणी (जीना) जीवन चाहते हैं– **सव्वेसिं जीवियप्पिय** मरना कोई नही चाहता है, अर्थात् मरने मे वे दु खानुभूति करते है।

भगवान् की करुणा चरम छोर को छू चुकी थी। आधि–व्याधि एव उपाधि के दु खो से ग्रस्त ससारी प्राणियो को देख कर वे उन्हें दु खो से उपरत करने के लिये सदा उत्कठित रहते थे। उनकी करुणा का कितना प्रभाव था और वे जीवो के प्रति कितने अधिक करुणावत थे– ये तो उनके अतिशय ही स्पष्ट कर देते हैं।

तीर्थकर भगवत जिस किसी भूखड मे विचरण करते हैं, उसके आस–पास चारो ओर पच्चीस–पच्चीस योजन (सौ–सौ कोस) की दूरी तक इति–चूहे आदि जीवो से धान्यादि की क्षति नहीं होती, प्लेग आदि जन–सहारक रोग नहीं होते। स्वचक्र–स्वराज्य, पर चक्र–पर राज्य की ओर से किसी प्रकार का भय नही होता। अतिवर्षा, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष एव दुष्काल की स्थिति भी नहीं बनती है। यहा तक कि पूर्व मे किसी प्रकार का उपद्रव चल रहा हो तो वह भी शात हो जाता है। उनके समवसरण मे जन्मजात शत्रु सर्प–नेवला, बकरी–शेर भी सारे वैर भाव को भूल कर प्रेम के साथ एकत्रित होकर देशना का पान करते हैं।

इन अतिशयो से स्पष्ट हो जाता है कि तीर्थंकर भगवत जीवो के प्रति कितने करुणाशील होते हैं। भगवान् शीतलनाथ को इसलिये पर दु ख छेदन करने वाला भी कहा है।

करुणा की तीसरी व्याख्या इस प्रकार की गई है–

अभयदान ते मल क्षय करुणा

अभयदान के साथ कर्म मल का क्षय करने को भी करुणा कहा गया है। गत दिन अभयदान के विषय मे चर्चा कर चुके हैं। आज उससे सम्बन्धित कर्म मल क्षय के विषय मे कुछ चर्चा कर लेना चाहिये।

जिस प्रकार प्रकाशमान हीरा रजकण लग जाने से मलिन बन जाता है, जिस प्रकार चमकदार गोल्ड (सोना) मिट्टी के कारण मलीमष हो जाता है, ठीक इसी प्रकार अनन्त–अनन्त गुणो से सम्पन्न आत्मा कर्मो से आबद्ध होकर मलीमष बन जाती है, उसका स्वाभाविक स्वरूप विकृत बन जाता है।

जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया से हीरे का प्रकाश एव स्वर्ण की चमक लाई जा सकती है, उनका मलिन रूप हटाया जा सकता है, उसी प्रकार सत्–पुरुषार्थ के द्वारा आत्म सबद्ध कर्म परमाणुओ का पौद्‌गलिक प्रभाव भी हटाया जा सकता है। उसका शुद्ध रूप विकसित किया जा सकता है। वह सत्पुरुषार्थ विविध रूपो मे विविध प्रकार से किया जा सकता है। अभयदान के द्वारा भी कर्मो का मलीमष रूप आत्मा से हटाया जा सकता है।

बाह्य मल क्या है?

मल शब्द अनेक अर्थो मे लिया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से मल का अर्थ कीचड एव अशुचि आदि निम्न तत्त्वो से लिया जाता है। ज्ञानीजन जैसे शरीर की अशुचि को मल समझते है वैसे ही आत्मा पर लगे हुए कर्मो को भी मल समझते हैं। अशुभ कर्म आत्मा की पवित्र सुगन्ध को भी दुर्गन्धित कर देते हैं। (यह एक उपमा है) जिस प्रकार बाहर का मल जब सडने लगता है तो वह आस–पास के वायुमण्डल को भी दूषित बना देता हे। इस दुर्गन्धित वायुमण्डल मे बिखरे जर्म्स (कीटाणु) स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद सिद्ध होते हैं। मानव के स्वय के शरीर मे भी अशुचि आदि के रूप मे कई तरह के दुर्गन्धित कीटाणु भरे पडे रहते हैं। यदि कुछ दिनो के लिये मानव अशुचि–विसर्जन बद कर दे तो उसके शरीर मे भयानक रोग पेदा हो सकते हैं। वे रोग उसके जीवन का अन्त करने वाले भी बन सकते है। अत यथासमय मल विसर्जन भी आवश्यक है।

नगर के वायुमण्डल को स्वच्छ रखने के लिये नगर निगम बनाया जाता है। नगर निगम के सदस्यगण वायुमण्डल की स्वच्छता का ध्यान रखते हैं। यह सब पद्धति बाह्य वायुमण्डल को स्वच्छ रखने के लिये अपनाई जाती है। आज का प्रबुद्ध वर्ग स्वस्थता के लिये बाह्य स्वच्छता की अनिवार्यता भली–भॉति जानता है।

आन्तरिक मल क्या है?

आन्तरिक स्वच्छता के लिये बाहरी वायुमण्डल की स्वच्छता का होना भी आवश्यक है। बाहरी वायुमण्डल का प्रभाव भी साधक पर पडे बिना नही रहता। आगमो मे भी जहा तीर्थंकर भगवत आदि महापुरुषो के विचरण का वर्णन आता है तो वहा निवास स्थल प्राय बगीचो मे ही बतलाया गया है। राजगृह मे भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ तो वे गुणशील बगीचे मे

पधारे। इसी प्रकार जिस किसी भी नगर मे उनका पदार्पण हुआ उनके विराजने का स्थल प्राय बगीचो मे ही रहा। वायुमण्डल की स्वच्छता, स्वास्थ्य की स्वस्थता मे भी सहायक बनती है। स्वास्थ्य की स्वस्थता आत्मिक साधना मे सहायक बनती है।

आजकल देश का वातावरण बहुत दूषित बनता जा रहा है। यह दूषितावस्था दो प्रकार से बढती जा रही है– जनसख्या की निरन्तर अभिवृद्धि तथा देश की व्यवस्था समुचित नहीं होने से, विलासी वातावरण भी वायुमण्डल को दूषित बना रहा है। नशीले पदार्थो का व्यसनी बन कर मानव धूम्रपान आदि से भी वायुमण्डल को दूषित कर रहा है। यही नही, दुश्चिन्ताओ से भी वायुमण्डल दूषित होता है। मन मे उठे राग–द्वेष रूप सकल्प–विकल्पो का प्रभाव श्वास के माध्यम से वायुमण्डल को दूषित करता है। इस दूषित वातावरण से प्राय मानव किसी न किसी रोग से ग्रस्त बना हुआ है। अन्यान्य कारणो के साथ यह रुग्णता भी उसकी आत्म–साधना मे बाधक बन रही है।

स्वच्छता विदेशो मे

ऐसा सुनने एव पढने को मिलता है कि विदेशो मे स्वच्छता के लिये पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है। वहा के नागरिक भी स्वच्छता के लिये विशेष जागरूक हैं। यह स्वच्छता उनकी सभ्यता का एक अग बन गई है। इसके कुछ उदाहरण भी सुनने को मिलते है– एक बार कोई व्यक्ति बस मे बैठा धूम्रपान कर रहा था तो समीप बैठे व्यक्ति ने उसे निषेध किया तथा समझाया कि तुम्हारे धूम्रपान करने से वायुमण्डल दूषित हो रहा है और वह दूषित वायुमण्डल श्वास के माध्यम से हमारा स्वास्थ्य खराब करता है। किन्तु उस व्यक्ति ने समीपस्थ व्यक्ति की बात पर कोई ध्यान नही दिया और मस्ती से धूम्रपान करता रहा। कुछ ही समय के बाद जब वही व्यक्ति गिलास मे पानी लेकर पीने लगा तो समीपस्थ व्यक्ति ने यह सुन्दर अवसर देखकर उसकी गिलास मे अपना हाथ डालकर उसका पानी गदा कर दिया। यह देखकर वह चिल्ला उठा– तुम यह क्या कर रहे हो, मेरा सारा पानी डर्टी (गन्दा) कर दिया अब मैं इसे कैसे पीऊगा? तब समीपस्थ व्यक्ति ने उसे समझाया– तुम्हे हमारे ऑक्सीजन को गदा करने का क्या अधिकार था। मना करने पर भी तुमने धूम्रपान करना बद नही किया और सारा वायुमण्डल दूषित कर दिया तो मैंने भी तुम्हारा पानी गदा कर दिया। उस व्यक्ति की बात को सुनकर

सामने वाला व्यक्ति स्तब्ध रह गया। बस मे स्थित सभी लोग उसकी बात का समर्थन करने लगे।

आँखों देखा हाल

विदेशी लोगो की स्वच्छता का एक नमूना मैने साक्षात् भी देखा– जब भीनासर (बीकानेर) मे स्व आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा स्थविरावास कर रहे थे, उनके किसी रोग का निदान करने के लिये एक विदेशी (फोरेनर) डाक्टर (जो कि भारत मे आया हुआ था) वहा पहुचे। जब आचार्यदेव के स्वास्थ्य का निदान कर रहे थे, उस समय उसके नाक मे श्लेष्म आ गया था। मैने देखा– डाक्टर सा ने तुरन्त श्लेष्म को रुमाल मे लिया और अपने कोट की जेब मे डाल लिया। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इन लोगो मे कितनी सभ्यता है। श्लेष्म को इधर–उधर डालकर गदगी नही फैलाई।

इस घटनाक्रम को देखकर आश्चर्य होता है कि जिन देशो को नास्तिक समझा जाता है, जो धार्मिकता की दृष्टि से बहुत पिछडे हुए हैं, उनमे भी इतनी सभ्यता है और भारत, जिसको धार्मिकता की दृष्टि से प्रधान समझा जाता है, सस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से जिसका इतिहास भरा पडा है, वहा आज के भारतीय लोग सभ्यता एव सस्कृति की दृष्टि से बहुत पिछडे हुए हैं। नाक का श्लेष्म होगा तो फट निकाल कर इधर–उधर डाल देगे। यहा तक कि धर्म–स्थान का भी खयाल नही रखा जाता, भीतो पर इधर–उधर डाल दिया जाता है। पान खायेगे तो इधर–उधर थूकते रहेगे। कहॉ हे सभ्यता?

छोटी–छोटी बातो मे जब तक सभ्यता की स्थिति नही आएगी, व्यसनमुक्ति रूप स्वच्छता नही अपनाई जाएगी, तब तक आन्तरिक कर्म–मल से आत्मा को स्वच्छ कैसे बनाया जा सकता है?

स्वच्छता का परम प्रतीक-साधु जीवन

आत्म साधना के परम प्रतीक साधु जीवन मे स्वच्छता के लिये स्वय प्रभु महावीर ने विवेक बतलाया है। जेसे कि नाक मे श्लेष्म आ जाय तो साधक इधर–उधर न डाले किन्तु उसे कपडे मे लेकर मसल कर सुखा दे जिससे गदगी न फैले। उसमे गिरकर जीव हिसा न हो। साथ ही, श्लेष्म मे समुच्छिम जीवो के उत्पन्न होने की स्थिति भी न बने। यद्यपि शास्त्रकारो ने जितना बाह्य स्वच्छता पर बल नही दिया उतना आन्तरिक स्वच्छता पर बल दिया हे।

बाहरी शुद्धि से तात्पर्य व्यसनमुक्ति रूप स्वच्छता, सभ्यता एव सदाशयता से है। इस प्रकार बाह्य रूप से स्वच्छता आने पर आन्तरिक कर्म–मल प्रक्षालित करने मे आत्मा को बहुत बडा सबल मिलता है।

शीतल जिनपति ने आत्म साधना द्वारा कर्म–मल का प्रक्षालन कर निज स्वरूप अभिव्यक्त किया था। इसीलिये कवि ने कहा है–

अभयदान ते मलक्षय करुणा।

अर्थात् भगवान के करुणा गुण की अभिव्यक्ति अभयदान के साथ कर्म–मल क्षय के रूप मे अभिव्यक्त हुई थी।

करुणा से परम लक्ष्य की प्राप्ति

जब आत्मा ससार के समस्त प्राणियो के प्रति करुणावत बन जाती है उसकी हर वृत्ति–प्रवृत्ति आत्मीयता से ओत–प्रोत हो जाती है, तब अनादिकाल से सबद्ध कर्म–मल आत्मा से विलग होने लगते हैं। आत्मा का सुविशुद्ध रूप विकसित होने लगता है। जब आत्मा से घातिक कर्म–मल प्रक्षालित–क्षपित हो जाते है, तब आत्मा का अनन्त चतुष्टय रूप अभिव्यक्त हो जाता है। और जब अघातिक कर्म क्षपित हो जाते हैं तब आत्मा का अखिल स्वरूप सदा–सदा के लिये अभिव्यक्त हो जाता है।

शीतल जिनपति के करुणा गुण की व्याख्या को लक्ष्य मे रखते हुए भव्य आत्माए यदि कर्म–मल की क्षपणा के लिये बाह्य आचार–व्यवहार की शुद्धि के साथ–साथ आन्तरिक कर्म–मल को क्षपित करने का प्रयास करेगी तो एक न एक दिन मुक्ति का वरण कर सकेगी।

पुद्गलानन्दी नहीं, आत्मानन्दी बनो

- समीक्षण शक्ति की अभिव्यक्ति का अवरोधक कर्म
- उदासीनता बनाम समीक्षण
- उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्त सत्
- पौद्गलिक परिवर्तन
- पुद्गलानन्द शाश्वत नही
- पुद्गलानन्द का परिणाम
- आत्माभिमुख बनो
- दुर्गंध भरा परिखोदक
- परस्पर चर्चा–विचर्चा
- सम्राट् का रोष
- अमनोज्ञ का मनोज्ञ मे परिवर्तन
- श्रावक के सम्पर्क से परिवर्तन सम्राट् मे
- त्रिविध उदासीनता

"उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।"

–तत्त्वार्थ सूत्र 5/29

ससार के समस्त सत् पदार्थ उत्पत्ति, विनाश शक्ति होने के साथ ही ध्रुवत्व स्वभाव वाले हैं। जड एव चैतन्य पर्यायो की अपेक्षा उत्पन्न–नष्ट होते रहते हैं। किन्तु जडत्व एव चैतन्यत्व की अपेक्षा ध्रुव हैं। उनका मौलिक स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता।

पुद्‌गलो मे दृश्यमान मनोज्ञता, कमनीयता, रमणीयता, आकर्षकता पुद्‌गलो के ही परिवर्तन से अमनोज्ञ, अकमनीय, अरमणीय, अनाकर्षण मे परिवर्तित हो जाती है।

बचपन का सुन्दर रूप यौवनत्व मे और यौवनत्व वृद्धत्व मे जरा–जीर्ण होता हुआ नष्ट हो जाता है। परिवर्तन के इस ध्रुव सिद्धान्त को परिवर्तित करने का सामर्थ्य ससार के किसी भी व्यक्ति मे नही है।

साधक को स्वात्म बोध के साथ समीक्षणपूर्वक पुद्‌गलो के परिवर्तन को समझते हुए अमरत्व रूप, अनन्त सुख को प्राप्त करने के लिये प्रयास करना चाहिये।

○○○

शीतल जिनपति ललित त्रिभगी
विविध भगी मन मोहे रे
करुणा कोमलता तीक्षणता
उदासीनता सोहे रे।।

दृश्यभूत विराट के पीछे एक अद्भुत शक्ति सचरण कर रही है। जिस शक्ति के द्वारा ही विश्व का विचित्र रूप परिवर्तित होता है। वह अद्भुत शक्ति है, आत्मा। दृश्यभूत पदार्थ रूपी जड है किन्तु इन पदार्थों के भीतर काम करने वाली शक्ति मौलिक रूप से अदृश्य एव अरूपी है। जड और चैतन्य के सम्मिश्रण का ही प्रभाव विश्व का विचित्र रूप है। चेतना अपनी समीक्षण अन्त प्रज्ञा को जगा कर जडत्व से विलग हो सकती है। जो तत्त्व चर्मचक्षुओ से दृष्ट हैं, उन स्थूल तत्त्वो के अतिरिक्त भी ससार मे अनेको सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व विद्यमान हैं। जिन तत्त्वो का अवलोकन चर्मचक्षुओ से नहीं किया जा सकता है, उनके लिए विशेष प्रज्ञा–समीक्षण प्रज्ञा की आवश्यकता है। वह विशेष प्रज्ञा बिना आत्म–जागरण के प्रस्फुटित नही हो सकती। तीर्थंकर भगवतो के पास वह विशेष प्रज्ञा चरम सीमा को पहुँची हुई होती है। जिससे वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वो को भी स्पष्ट रूप से जानने मे समर्थ हो जाते हैं। उनके प्रज्ञा लोक से विश्व की कोई भी वस्तु अदृष्ट नही रहती। समीक्षण प्रज्ञा ससार के सभी जीवो के पास भी सत्ता रूप मे विद्यमान है। किन्तु उसके ऊपर कर्मो का आवरण आया हुआ हे। कर्माच्छादित वह प्रज्ञा अपने यथातथ्य स्वरूप मे अभिव्यक्त नही हो पाने के कारण सकल जगवर्ती पदार्थो का अवबोध नहीं कर पाती।

समीक्षण शक्ति की अभिव्यक्ति का अवरोधक कर्म

गगनागन मे भ्रमणशील भास्कर, जब मेघाच्छादित हो जाता है तव उसी की शक्ति मेघो से आवृत हो जाती हे। फलस्वरूप सूर्य का प्रकाश सकुचित हो जाता है। यह सकुचितता तभी तक रह पाती है, जव तक मेघो का आवरण बना रहता है। जब वायु सचरण से मेघावरण हट जाता हे तव वही सूर्य यथावत् अपने प्रकाश का प्रसार करने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार ससार की परिणति मे विद्यमान समस्त आत्माए कर्मो से आच्छादित है। वह समीक्षण प्रज्ञा, जो कि आत्माओ मे सत्ता रूप से विद्यमान हैं। किन्तु कर्माच्छादित होने से जगत के समस्त वस्तु स्तोम को जानने मे सक्षम नही

बन पाती लेकिन तीर्थंकर देवो ने तत् सम्बन्धित कर्म क्षपित कर डाले हैं। उनकी समीक्षण की विलक्षण प्रज्ञा, केवलज्ञान की शक्ति अभिव्यक्त हो चुकी है अत उनके सकल वस्तु विज्ञान मे कोई बाधा उत्पन्न नही होती।

उदासीनता बनाम समीक्षण

विलक्षण प्रज्ञासम्पन्न शीतल जिनपति का तीसरा गुण उदासीनता का बतलाया है। जैसा कि कवि ने कहा है–

हानादान रहित परिणामी।

उदासीनता विक्षण रे।।

अर्थात् हे भगवन्! आप इष्ट या अनिष्ट वस्तु के राग–द्वेष से रहित हैं, ससार के समस्त पदार्थो के प्रति आपकी उदासीनता–समभाव है।

समस्त विश्व की सर्जना मुख्यतया दो तत्त्वो से हुई है– जड और चैतन्य। जड–चेतन का सयोग ही विश्व मे विलक्षण विशेषता उपस्थित करता है। जड पदार्थ के सयोग से कभी मनोज्ञ वस्तु का निर्माण हो जाता है तो कभी अमनोज्ञ वस्तु का। ससारी आत्माओ मे भी यथाबद्ध कर्म के अनुसार इष्ट–अनिष्ट अवस्थाए पाई जाती है। ये सब पुद्गलो के सयोग का ही परिणाम हैं। जिनके सयोग से मनोज्ञ वस्तु अमनोज्ञ के रूप मे, अमनोज्ञ वस्तु मनोज्ञ के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। मनोज्ञता या अमनोज्ञता से बने राग या द्वेष के परिणाम कर्मबन्धन कराने वाले बनते हैं, किन्तु जब चेतना पुद्गलो के सयोग को समझकर उनके प्रति उदासीन तथा सम्यक् प्रकार से देखने की शक्ति प्राप्त कर लेती है तो राग द्वेष के परिणामो से होने वाले कर्म–बन्धन से बच जाती है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्

ससार की हर वस्तु परिवर्तनशील है। हर पल हर क्षण पदार्थो मे परिवर्तन होता रहता है। वाचक उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र मे स्पष्ट निर्देश दिया है– 'उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत्'। ससार का प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न–विनष्टशील होते हुए भी स्व–स्वभाव की अपेक्षा ध्रुव है।

उत्पन्न–विनाश के साथ ध्रुवत्व के रूप मे पदार्थ किस प्रकार विद्यमान रहता है– इसका विज्ञान एक स्थूल रूपक के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

एक राजा के एक राजकुमार एव एक राजकुमारी थी। राजकुमार स्वर्ण कुण्डल को तुडवा कर स्वर्ण मुकुट बनाना चाहता था, लेकिन राजकुमारी स्वर्ण कुण्डल को उसी रूप मे रखना चाहती थी। इन दोनो के विचारो से निरपेक्ष सम्राट् मध्यस्थ थे। क्योकि वे सोच रहे थे कि स्वर्ण कुण्डल से स्वर्ण मुकुट बनाया जाय या उसे स्वर्ण कुण्डल के रूप मे ही रखा जाय, दोनो मे स्वर्ण तो विद्यमान रहेगा ही। उसमे कोई क्षति होने वाली नहीं है। ठीक इसी प्रकार ससार की समस्त वस्तुए परिवर्तनशील हैं, हर क्षण प्राचीन पुद्गल परिवर्तित हो जाते है और नवीन पुद्गल सम्बन्धी होते जाते हैं। इतना होते हुए भी वस्तु के मौलिक स्वरूप मे कोई अन्तर नहीं आता। जिस प्रकार एक काष्ठ पट है। उस पर से हर क्षण पुद्गल परमाणु निकलते जाते हैं और दूसरे परमाणु पट्ट से सयोजित होते जाते हैं। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। किन्तु इस क्रम की विज्ञप्ति तब होती है, जब काष्ठ–पट्ट जर्जरित हो जाता है।

इसी प्रकार देह पिण्ड मे भी उत्पाद–व्यय चलता रहता है। पुराने परमाणुओ का विसर्जन एव नये परमाणुओ का सर्जन होता रहता है। वृद्धावस्था तत्क्षण नही आती, किन्तु निरन्तर पौद्गलिक परमाणुओं के परिवर्तन से आती है। यह परिवर्तन शीघ्रता से बोधगम्य नहीं होने से मानव वस्तु का यथार्थ बोध नही कर पाता।

पौद्गलिक परिवर्तन

पुद्गलो का परिवर्तन सशक्त से सशक्त पदार्थ को भी जीर्ण–शीर्ण कर डालता है। आपने वज्ररत्न का नाम सुना होगा। वह इतना सशक्त होता है कि उसके ऊपर कितने ही मन लोहा डाल दिया जाय, किन्तु उसका एक नोक तक नहीं टूटता। ऐसे वज्ररत्न मे भी हर क्षण परिवर्तन होता रहता है। प्राचीन पुद्गल परमाणु हटते जाते हैं, नये परमाणु सयोजित होते जाते हैं। यह क्रम चलता रहता है। समय के परिपाक से वह वज्ररत्न भी इतना जीर्ण हो जाता हे कि एक पाच वर्ष का वालक भी उसे हाथ मे लेकर मिट्टी के ढेले की तरह मसल सकता है।

कोई भी वस्तु सदा–सर्वदा के लिए उत्पाद–व्यय से रहित मात्र ध्रौव्यत्व रूप मे रहने वाली नहीं है। जड पदार्थ मे उत्पाद–व्यय होते हुए भी वे जडत्व की अपेक्षा ध्रुव होते है। कितना भी परिवर्तन हो जाय किन्तु जड कभी चेतन्य नही होता। इसी प्रकार चैतन्य भी उत्पाद–व्यय स्वभाव वाला

होते हुए भी चैतन्यत्व की अपेक्षा ध्रुव है। जडत्व की अपेक्षा चेतन्यत्व मे अनिर्वचनीय अवस्थाए पाई जाती है। जड को सद्द्रव्य के रूप मे कहा जा सकता है पर चैतन्यत्व मे सत् के साथ–साथ ज्ञान एव वास्तविक आनन्द की अवस्थाए भी रही हुई हैं। सक्षेप मे जड और चैतन्य मे यह मौलिक अन्तर है।

पुद्गलो के परिवर्तन से मृदु शब्द भी कठोर और कठोर शब्द भी मृदु हो जाता है। पुद्गलो के परिवर्तन से ही रूपवान कुरूप और कुरूप रूपवान बन जाता है। पुद्गलो के परिवर्तन से ही खट्टा रस मीठा व मीठा खट्टा बन जाता है। पुद्गलो का परिवर्तन ही सुगन्ध से दुर्गन्ध के रूप मे और दुर्गन्ध को सुगन्ध के रूप मे बदल सकता है। पुद्गलो का परिवर्तन ही खुरदरे स्पर्श को सुहावना और सुहावने स्पर्श को खुरदरा बना सकता है। पौद्गलिक परिवर्तन ही ससार की विविध विचित्रता का मूल हेतु है। पुद्गलो पर आसक्त होकर आनन्द मनाने वाला व्यक्ति कभी भी शाश्वत सुख की अनुभूति नही कर सकता।

पुद्गलानन्द शाश्वत नहीं

पुद्गलानन्दी कोई भी आत्मा शाश्वत ज्ञान की उपलब्धि नही कर सकती। क्योकि पुद्गलो मे वह शाश्वत तत्त्व नही, जिससे वे शाश्वत सुखदायी बन सके। यथार्थ मे तो पुद्गल सुख रूप है ही नही। जो मिष्टान्न सुख देने वाला माना जाता है। उसी का अधिकाधिक आहार करने पर वही दु खदायी बन जाता है। यही स्थिति अन्य पौद्गलिक वस्तुओ की भी है। सुख रूप दिखने वाले पुद्गल वास्तव मे सुख रूप नही होकर सुखाभास के रूप मे हैं। अत भव्य आत्मा पुद्गलानन्दी न बनकर आत्मानन्दी बनने का प्रयास करे। आत्मानन्द वह आनन्द है, जो सदा–सर्वदा के लिए परम आनन्द प्रदान करने वाला है, जिस आनन्द की अभिव्यक्ति होने पर आत्मा कभी भी दु ख रूप स्थिति मे नहीं आ सकती। आत्मानन्द को पाने के लिए आवश्यकता है आत्माभिमुख बनने की, समीक्षण प्रज्ञा को उजागर करने की।

पुद्गलानन्द का परिणाम

आत्माभिमुख आत्मा पौद्गलिक सुखो मे कभी भी आनन्द का अनुभव नही करती। वह तो पौद्गलिक आवर्त मे रहकर भी उससे निरपेक्ष रहती है। मनोज्ञ वस्तुओ पर राग भाव व अमनोज्ञ वस्तुओ पर द्वेषभाव उत्पन्न नहीं होने देती। पौद्गलिक वस्तुओ से उत्पन्न राग–द्वेष की परिणति आत्मा

को जन्म—मरण के ससार मे भटकाने वाली बनाती है। नन्दन मनिहार ने अपने द्वारा निर्मित पुष्करणी पर आसक्ति रखी थी। उसके मन मे सदा यह विचार रहता था कि मेरी पुष्करणी बहुत अच्छी है, बहुत सुन्दर है। इस आसक्ति का यह परिणाम आया कि नन्दन मनिहार का जीव मानव शरीर को छोडकर उसी पुष्करणी मे मेढक के रूप मे उत्पन्न हो गया। मनुष्य योनि से तिर्यंच योनि मे चला गया। यह पुद्गलानन्दी बनने का परिणाम था।

आत्माभिमुख बनो

जो साधक पुद्गलासक्ति से निरपेक्ष हो समीक्षण की साधना मे तन्मय बन जाता है, वह आत्मोत्कर्ष की दिशा मे प्रगतिशील बन जाता है। जब कृष्ण महाराज अपने दलबल के साथ किसी मार्ग को पार कर रहे थे उस समय रास्ते मे एक मरी हुई कुतिया पडी थी, जिसकी भयानक दुर्गन्ध दूर—दूर तक फैल रही थी। कृष्ण महाराज के आगे चलने वाले सभी अनुचर, अश्वारोही आदि उस दुर्गन्ध से घृणा करते हुए नाक पर पट्टी बाधकर आगे बढ रहे थे। जब उसी कुतिया के निकट से कृष्ण महाराज की सवारी निकली तो आश्चर्य कि कृष्ण महाराज को न तो दुर्गन्ध से घृणा हुई और न अपने नाक पर पट्टी ही बाधी। उनकी दृष्टि तो कुतिया की दतपक्ति पर जा टिकी थी। कृष्ण महाराज बोले— देखो इस कुतिया की दतपक्ति कितनी क्रमबद्ध और स्वच्छ है। यह है सम्यक् दृष्टि आत्मा का विचार। स्वात्माभिमुख साधक यह जान लेता है कि यह मनोज्ञता या अमनोज्ञता पुद्गल के परिणाम से है। इस पर राग—द्वेष कर कर्म बन्धन नही करना चाहिये। पुद्गलो के परिवर्तन को सुस्पष्ट तरीके से समझने के लिए मै आपके समक्ष एक आगमिक उदाहरण प्रस्तुत करता हू। ज्ञाता धर्मकथाग सूत्र के बारहवे अध्याय मे सुबुद्धि प्रधान और जितशत्रु राजा का उदाहरण आता है जिससे पोद्गलिक परिवर्तन स्पष्ट हो जाता है।

दुर्गन्ध भरा परिखोदक

'तेण कालेण तेण समएण' उस काल, उस समय मे चम्पा नामक सुरम्य नगरी के राजा जितशत्रु और प्रधान अमात्य सुबुद्धि थे। जितशत्रु सम्राट की धर्म के प्रति रुचि कम थी। किन्तु सुबुद्धि प्रधान जीवा—जीव के विज्ञाता तथा बारह व्रतधारी श्रमणोपासक थे। दोनो मे धार्मिक भिन्नता होते हुए भी परस्पर किसी प्रकार का वैमनस्य नही था। शत्रुओ का नगर मे प्रवेश

नही हो सके, तदर्थ दुर्ग के बाहर चारो ओर विशाल खायी थी जिसका पानी चर्बी, मास, पीब के समूह से मिश्रित था। कुत्ते, मार्जार आदि मृत कलेवरो से सयुक्त था। गध, रस, स्पर्श आदि से वह अत्यधिक विकृत बना हुआ था। उस पानी को 'परिहोदए' परिखोदक के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

परस्पर चर्चा-विचर्चा

किसी समय सम्राट स्नानादि कार्यो से निवृत्त हो सर्वालकारो से विभूषित होकर जब भोजन करने के लिए रमणीय आसन पर बैठे थे, तब उनके साथ अन्य अनेक राजेश्वर, अमात्य, सार्थवाह आदि भी उपस्थित थे। सभी ने सुस्वादित असण–पाण, खाइम, साइम चारो प्रकार का आहार किया। भोजनोपरान्त सम्राट ने उपस्थित व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए कहा– 'अहोण देवाणुपिया इमे मणुण्णे असण पाण, खाइम, साइम, वण्णेण उववेए जाव कासेण उववेय अस्सायणिज्जे, शिस्सोयाणिज्जे, पीयविज्जे, दीवणिज्जे, दप्पाणिज्जे, मर्याणज्जे, विहणिज्जे, सव्विदियगायपल्हायणिज्जे।'

हे देवानुप्रियो, यह तृप्तिकारक अशनादि शुभ वर्णादि से युक्त है। आस्वादनीय है, स्वादनीय है। समस्त इन्द्रियो को तृप्ति देने वाला है। जठराग्नि का उद्दीपक, बलवर्धक आदि अनेक विशेषताओ से सम्पन्न है।

सम्राट की बातो को सुनकर उपस्थित अनेक व्यक्तियो ने कहा– स्वामिन्! जैसा आप फरमाते है, अशनादिक उसी प्रकार का है। अपनी बात का समर्थन सुनकर प्रधान अमात्य से भी सम्राट ने यही बात कही किन्तु सुबुद्धि प्रधान ने अन्यो की तरह सम्राट की बात का समर्थन नहीं किया, प्रत्युत् मौन रहे। सम्राट के द्वारा दो बार, तीन बार अपनी बात के दोहराने पर सुबुद्धि ने कहा– राजन्! मुझे इस प्रकार के अशनादिक से किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं है। क्योकि राजन् सुब्भि सद्दणि पुग्गला दुब्भि सद्दलाए परिणमति दुब्भि सद्दावि पोग्गला सुब्भि सद्दलाए परिणमति। शुभ शब्द रूप पुद्गल और अशुभ शब्द रूप पुद्गल परस्पर परिणमित हो जाते हैं। इसी प्रकार गन्ध, रस–स्पर्श मे भी परिणमन होता रहता है। यह परिणमन प्रायोगिक और नैसर्गिक दोनो प्रकार से होता है।

सम्राट का रोष

सुबुद्धि प्रधान की इस विवेकपूर्ण बात को सुनकर सम्राट तुष्ट नहीं हुआ किन्तु बात आगे न बढे इस दृष्टिकोण से मौन रहा। कुछ दिवसान्तर मे

जब अश्व क्रीडा के लिए अपने सुभटो के साथ नगर से बाहर निकले तब बाहर परिखोदक से भयकर दुर्गन्ध फूट रही थी। सम्राट सहित प्राय सभी सुभट उस भयकर दुर्गन्ध से अभिभूत होकर नासिका पर दुपट्टा लगाकर शीघ्रता से खाई पथ को पार करने लगे। चलते हुए सम्राट ने कहा कि यह दुर्गन्ध अधिकतर 'इमे फरिहोय अमणुण्णो' इस परिखोदक से आ रही है। सम्राट की बात का प्राय सभी ने समर्थन किया किन्तु सुबुद्धि प्रधान मौन थे। सम्राट ने जब उनसे भी एतद् विषयक प्रतिक्रिया करने के लिए बहुत आग्रह किया, तब प्रधान समदृष्टि भाव से उदासीनता पूर्वक बोले–

राजन्! अम्ह एयसि परिहोगगति केई पिम्हए एव। खलुसामी, सुब्भि सद्दावि पोग्गला दुब्भि सद्दलाए परिणमती दुब्भि सद्दावि पोग्गला सुब्भिताए।

राजन! इस दुर्गन्ध से मुझे कोई आश्चर्य नही है। यह तो पुद्गलो के परिवर्तन की विचित्रता का ही परिणाम है। सज्जनो! जीवाजीव के विज्ञाता श्रावक किसी के दबाव से सत्य तथ्य छिपाकर कभी भी अन्य को खुश करने के लिए असत्य का समर्थन नही करते। सुबुद्धि श्रावक ऐसा ही श्रावक था। जिसने ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी किसी प्रकार की परवाह नहीं करके सत्य तथ्य को सम्राट् के समक्ष रख ही दिया। किन्तु इस बार सम्राट आक्रोश मे आ गए और सुबुद्धि प्रधान से बोले– हे देवानुप्रिये! अविद्यमान तत्त्वो के प्रतिपादन से तथा मिथ्याभिनिवेश से इस तरह की प्ररूपणा मत करो। इस प्रकार की झूठी प्ररूपणाओ द्वारा अपने को एव दूसरों को भ्रमित मत करो।

अमनोज्ञ का मनोज्ञ में परिवर्तन

सम्राट् के आक्रोशपूर्ण शब्दो को सुनकर के भी सुबुद्धि प्रधान के मन मे किसी प्रकार का अन्यथा विचार नही आया। वे अपने सत्य पर अविचल बने रहे। साथ ही, मन मे स्फुटित हुआ– सम्राट् को जब तक पुद्गलो के परिवर्तन का प्रत्यक्षीकरण नही होगा, तब तक वे इस तथ्य को स्वीकार नही करेगे। यह सोचकर सुबुद्धि प्रधान ने गुप्त रूप से परिखोदन को अर्थात् दुर्गन्ध पूर्ण कुछ पानी घडो मे भरवाया और सात दिन–रात तक उसी प्रकार रखकर पुन दूसरे घडो मे वही पानी भरवाया। इस बार उसे फिल्टर करने के लिए 'साजी' क्षार पदार्थ भी डलवा दिया और त्वाक्षातिक से मुहर लगवा दी। सात दिन–रात उस पानी को उस प्रकार रखने के वाद पुन नये घडो मे उस पानी

को भरवाया। यही प्रक्रिया सात बार की गयी। इस प्रकार की प्रक्रिया से पानी बहुत स्वच्छ, मधुर एव आरोग्यप्रद बन गया। उसे और अधिक मधुर एव सुगन्धित बनाने के लिए केतकी, गुलाब आदि पुष्पो से सस्कारित किया। जब वह उदकरत्न अत्यधिक मधुर एव सुगन्धपूर्ण बन गया तब सुबुद्धि प्रधान ने उस पानी को राजा जितशत्रु को पिलाने के लिए भृत्य को सौंप दिया। सम्राट् जितशत्रु उस पानी को पीकर बहुत प्रसन्न हुए और उदकरत्न की प्रशसा करते हुए भृत्य को इसकी उपलब्धि के विषय मे पूछने लगे तब भृत्य ने बताया कि यह पानी सुबुद्धि प्रधान के यहा से लाया गया है।

श्रावक के सम्पर्क से परिवर्तन सम्राट् में

तत्क्षण सम्राट् ने सुबुद्धि प्रधान को बुलाकर कहा– अहो, तुम्हारे यहा इतना मधुर उदररत्न होते हुये भी तुमने मुझे नही पिलाया। क्या कारण है कि मैं तुम्हारा अप्रिय बना हुआ हू? प्रधान ने कहा– राजन्! यह उसी परिखोदक का पानी है। सम्राट् को आश्चर्य हुआ कि इतना दुर्गन्धपूर्ण पानी ऐसा मधुर, सुस्वादनीय कैसे बन गया? सुबुद्धि प्रधान ने कहा– राजन्! मैंने आपको पहले ही निवेदन किया था कि पुद्गलो के परिवर्तन से अशुभ भी शुभ मे परिवर्तित हो जाता है। इतने पर भी जब सम्राट् को विश्वास नहीं हुआ कि यह पानी परिखोदक का ही है तब सुबुद्धि प्रधान ने पानी को शुद्ध करने की सारी प्रक्रियाए सम्राट् के सामने प्रत्यक्ष की। इस प्रत्यक्षीकरण से सम्राट् को आश्चर्य हुआ, साथ ही जिज्ञासा भी कि सुबुद्धि प्रधान ने ऐसा विशिष्ट ज्ञान कहा से प्राप्त कर लिया। जिज्ञासा का समाधान किया सुबुद्धि प्रधान ने, राजन् मारसताजाव सव्यूयाभाव जिण वयणाओ उपलद्धा।

मुझे ऐसा सद्भूत भाव रूप विशिष्ट ज्ञान जिन–वचनो से प्राप्त हुआ है। इससे सम्राट् का भी धर्म की ओर आकर्षण हुआ और उसने सुबुद्धि प्रधान से जीवाजीव का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही "सुबुद्धिस्स अभयस्य अतिए पचाणु बयाई जाव ढुवालसविह सावय धम्म पडिवज्जइ" सुबुद्धि प्रधान से पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत– ये बारह व्रत अगीकार किये। इस प्रकार सम्राट् पुद्गलो के स्वरूप को समझकर उसी की आसक्ति से टले हुए आत्माभिमुख बनने लगे।

त्रिविध उदासीनता

भव्यात्माओ! रूपक तो और भी लम्बा है किन्तु इस रूपक से

पुद्गलो के परिवर्तन की अवस्था स्पष्ट रूप से जानी जाती है। अत पुद्गलो की शुभाशुभता पर राग–द्वेष की भावना उत्पन्न नहीं करनी चाहिये। पुद्गलानदी आत्मा कभी भी वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नही कर सकती। एतदर्थ शीतलनाथ भगवान पुद्गलो के प्रति उदासीन थे। उन्हे न तो शुभ पुद्गलो पर आसक्ति थी और न ही अशुभ पुद्गलो पर द्वेष, इसलिये कवि ने कहा–

हानादान रहित परिणामी उदासीनता वीक्षण रे।

इस उदासीनता की दूसरी व्याख्या करते हुए कवि ने कहा है "उदासीनता उभय विचक्षण।"

ससारी जीवो के शुभाशुभ परिणामो को अपने विशिष्ट ज्ञानालोक मे देखते हुये भगवान तटस्थ थे। इसी प्रकार कवि ने तीसरी व्याख्या भी प्रस्तुत की है 'प्रेरक विनकृति उदासीनता'। कोई निन्दा करे या प्रशसा। अच्छा कहे या बुरा। भगवान सभी ओर से निरपेक्ष होकर सहज रूप से आत्म–परिणति रूप कृति–कर्तव्य मे निष्ठावान थे। वे बिना प्रेरणा से स्वरूप रमण मे तन्मय रहते थे।

अत साधक को 'वैर वड्ढइ' अर्थात् भव परम्परा रूप अविच्छिन्न वैर को बढाने वाले भौतिक पुद्गलो मे आसक्त नहीं होना चाहिए। जो साधक जिन पुद्गलो से सुख की आशा रखता है, वास्तव मे वे सुख देने वाले नहीं हैं। भगवान ने स्पष्ट कहा है 'जेण सिया भण नोसिया' अत अनन्त आनन्द रूप मे रमण करने के इच्छुक साधक को पुद्गलानदी न बनकर आत्मानदी बनना चाहिये।

जब साधक अन्त मे पैठ करेगा, अन्त का समीक्षण करने लगेगा तो एक दिन निश्चित ही आत्मानद मे भी रमण करने लग जाएगा।

मानव जीवन और क्रियावती शक्ति

- चकडोलर और ससार
- गुणगान के साथ आचरण भी
- तीर्थंकर भी मानव हैं
- उदासीनता–निष्क्रियता नही है
- सिद्धात्मा भी निष्क्रिय नही हैं
- श्रावक तीर्थंकर नही बनते
- आप भी अनन्त सत्त्वसम्पन्न हैं
- रत्न परीक्षक–पहला जौहरी
- पहले जैसा दूसरा
- दूसरे जैसा तीसरा
- चौथा सबसे विलक्षण
- हानि मे मैं नही, तुम रहे
- वास्तव मे हानि मे कौन?

गुणो का प्रवेश जीवन मे नही होगा तब तक स्व का उत्थान नही हो सकता। किसी ने व्यापार करने का ढग सीख लिया– उसके गुर समझ लिये, इतने मात्र से उसे लाभ नहीं हो जाता। लाभ तो तब होता है, जब सीखे गये नियमो के अनुसार व्यापार मे प्रवृत्ति करता है। इन व्यावहारिक बातो का तो आपको बहुत अच्छा विज्ञान है। इन्हे समझने–समझाने की कोई आवश्यकता नही है। आपकी प्रज्ञा उस ओर तो बहुत तीव्रता से काम करती है। लेकिन उस समीक्षण प्रज्ञा का कुछ उपयोग आप इधर भी करिये, इसी से जीवन का महत्त्व समझा जा सकेगा। तीर्थकर भगवानो के गुणगान तक ही सीमित नहीं रहना है, अपितु उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने का प्रयास करना है।

तीर्थकर भी मानव हैं

जिन तीर्थंकर भगवतो का हम गुणगान करते है वे भी तो मानव ही थे। इसी मानव तन मे रहकर ही उन्होने सत्पुरुषार्थ के बल पर परम साध्यता को प्राप्त किया था। मानव–मानव की अपेक्षा उनमे और हमारे मे कोई अन्तर नहीं है। यही नही, जो पाच इन्द्रिया उनके थी, वही पाच इन्द्रिया हमारे भी हैं। उनके तीन कान या चार आखे नही थी। शरीर की मौलिक रचना मे भी कोई अन्तर नही है। इन सब की समानता होते हुए भी, वे तो भगवान बन गये और हम अभी तक भक्त ही बने हुए हैं। उनकी क्रियावती शक्ति ने उनको उच्च्य स्थान पर पहुँचा दिया और हमारी क्रियावती शक्ति अभी तक भी हमको परमोन्नत अवस्था की ओर नही पहुँचा पाई है।

उदासीनता-निष्क्रियता नहीं है

शीतलनाथ भगवान् के तीसरे गुण उदासीनता से कई निष्क्रियता अर्थ भी ले लेते हैं, जो योग्य नही हे। उदासीनता की व्याख्या यद्यपि गत दिन कर चुके हैं फिर भी इस पर कुछ विचार करना आवश्यक लग रहा है। निष्क्रिय व्यक्ति कभी भी आत्मोत्थान नहीं कर सकता। आत्मोत्थान क्रियावती शक्ति से ही होता हे। साधना के क्षेत्र मे उनकी निरन्तर प्रगति ही उनकी क्रियावती शक्ति की परिचायक है। सिद्धान्त की भाषा मे उट्ठाणे वा, कम्मे वा, बलेवा, वीरिए, पुरिसक्कार परक्कमे वा– अर्थात् आत्मा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम से सम्पन्न होती है। इन उत्थानादि के द्वारा ही भव्य साधक आगे बढता है। गुणस्थान का आरोहण भी इन्ही के द्वारा होता है। चोदहवे गुणस्थान मे भी इन उत्थानादि रूप क्रियावती शक्ति की प्रवृत्ति

निरन्तर चलती रहती है।

शीतल जिनपति मे उदासीनता का गुण इसलिये बतलाया है कि वे राग–द्वेष रहित होने से उनकी सभी क्रियाए–उपदेश देना, विहार करना, उठना, बैठना, आहार ग्रहण आदि उदासीनतापूर्वक होती थी। आत्म–सिद्धि नही हो पा रही है– इसका कारण क्या है? गहराई मे उतरने पर आपको ज्ञात होगा कि आपकी क्रियावती शक्ति सही दिशा की ओर कार्य नही कर रही है। उसे योग्य दिशा की ओर नियोजित करना आवश्यक है।

सिद्धात्मा भी निष्क्रिय नहीं है

बहुत लोग क्रिया शब्द से केवल कायिक हलन–चलन होना, इतना ही अर्थ करते है। इस हलन–चलन मात्र को क्रिया मानने वालो की दृष्टि मे सिद्धात्मा निष्क्रिय बन जाती है। क्योकि सिद्ध बनने से पूर्व ही काय योग का निरोध हो जाता है। काय योग ही नही, मन और वचन योग का निरोध भी हो जाता है। तीनो योगो मे से किसी भी योग का सूक्ष्मत भी परिस्पन्दन अवशेष नही रहता। इसीलिये चौदहवे गुणस्थानवर्ती आत्मा को अयोगी केवली कहा है। अत सिद्ध अवस्था मे तो मन, वचन, काया के होने का प्रश्न ही नहीं रहता। इतने मात्र से सिद्ध निष्क्रिय हो जाय और उनमे किसी भी प्रकार की क्रिया नही होती तो फिर कौन आत्मा होगी जो ऐसी सिद्ध अवस्था मे जाना चाहेगी।

षड्दर्शनो मे एक वैशेषिक दर्शन भी आता है जो सख्या की दृष्टि से पाचवे नम्बर पर है। उस दर्शन की मान्यता है कि आत्मा मोक्ष मे जाने के बाद बिलकुल निष्क्रिय हो जाती है, उपलखण्ड के समान हो जाती है। उसमे न सुख रहता है न दु ख। वह दोनो ही अवस्थाओ से सर्वथा निरपेक्ष हो जाती है। उनकी इस अवधारणा पर किसी ने कहा है–

वर वृन्दावने रम्ये, कोष्ट्रत्त्वमभि वाछितम्।
न तु वैशेषिकी मुक्ति, गोतमो गन्तुमिच्छति।।

वृन्दावन के जगल मे गधा बना जाना अच्छा है किन्तु गौतम द्वारा प्रतिपादित वैशेषिक मुक्ति मे जाने की कभी भी इच्छा नही होती।

सुज्ञो! यदि सिद्धो मे भी किसी भी प्रकार की क्रियावती शक्ति स्वीकार नही की जाएगी तो वह अवस्था करीब वैशेषिक दर्शन के अनुसार

ही हो जाएगी। किन्तु जैन दर्शन मे तो मुक्ति का विलक्षण रूप प्रतिपादित किया गया है। मुक्तिगत आत्मा अनन्त सुख से सम्पन्न हो जाती है। क्रिया शब्द से केवल हलन–चलन अर्थ लिया जाय तो इस दृष्टि से सिद्ध निष्क्रिय हैं। क्योकि वे अयोगी है किन्तु उनमे स्वात्मरमण क्रिया हर क्षण, हर पल हो रही है। स्वात्मा मे ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त सुख के साथ ही अनन्त–अनन्त शक्तियो का निवास है। सिद्ध अपनी इस अनन्त मे रमण करते रहते हैं। अत आत्मरमण क्रियावती शक्ति की अपेक्षा सिद्धो को निष्क्रिय नही कहा जा सकता। जिस प्रकार शरीर की अपेक्षा से वर्णादिक नहीं होने से उन्हे अरूपी कहा जाता है फिर भी आत्मा का मौलिक रूप तो उनमे होता ही है। उसी प्रकार शरीर सम्बन्धी क्रिया न होते हुए भी आत्म रमण रूप क्रिया तो सिद्धो मे भी होती है।

श्रावक तीर्थंकर नहीं बनते

उसी भव मे तीर्थकर बनने वाली भव्य आत्मा, माता के गर्भ मे ही तीन ज्ञान से सम्पन्न होती है– मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान। जब दीक्षा ग्रहण करती है तब मन पर्याय ज्ञान और हो जाता है। सभी तीर्थंकर क्षायिक सम्यक्त्व से सम्पन्न होते हैं। तीर्थंकर चौथे गुणस्थान से सीधे सातवे गुणस्थान मे प्रवेश करते हैं। श्रावक व्रत ग्रहण करना थोडा कायरता का सूचक है। जो आत्मा साधु जीवन अगीकार नही कर पाती, जिसके साधु जीवन अगीकार करने की स्थिति नही होती, वह आत्मा श्रावकत्व अगीकार करती है। तीर्थकर बनने वाली सभी आत्माए अनन्त सत्त्व से सम्पन्न होती हैं। अत उनके कायरता का तो कोई प्रश्न ही नही रहता। एतदर्थ ऐसी आत्माए चतुर्थ गुणस्थान से सीधी सप्तम गुणस्थान मे प्रवेश करती हैं।

आप भी अनन्त सत्त्व सम्पन्न हैं

बन्धुओ! तीर्थंकर भगवन्तो के जीवन को सुनकर हमे भी अपनी शक्ति को जगाना हे। हमारे भीतर भी अनन्त शक्ति का स्रोत हे। उस स्रोत को खोलनै के लिए 'उट्ठिए नो पमायए'– उठिए, अब प्रमाद करने का अवसर नहीं है। इस दुर्लभ मानव जीवन के अमूल्य क्षण वीतते चले जा रहे हैं। जो भी क्षण वीत चुका हे, लाख प्रयत्न करने पर भी वह वापस नहीं आने वाला है।

'जा जा वच्चई, रयणी न सा पडिनियत्तई' जितने दिन और रात्रिया वीत चुकी हें उसमे से कोई भी पुन आने वाली नही है। आयुष्य के वीते हुए

एक क्षण को भी ससार की कोई भी शक्ति वापस नही ला सकती। ऐसे अमूल्य क्षणो को व्यर्थ ही हाथ से मत जाने दीजिये। आपको चातुर्मास का भव्य प्रसग प्राप्त हुआ है। सत और सतियो का सान्निध्य भी मिल रहा है। जहा गावो मे सत–सतियो को एक–एक दिन रखने के लिये भी लोग तरसते हैं, वहा आपको पूरा चातुर्मास– वह भी चार महीने का नही, अपितु पाच मास का। इस दुर्लभ सयोग को यो ही मत जाने दीजिये। श्रावण, भादवा मास मे तो श्रावकगण वैसे ही धर्म–ध्यान का विशेष लाभ लेते हैं। सामायिक, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध, दया आदि जिसकी जिसमे रुचि हो, वह करना चाहिये। यह मानव जीवन मिला है। यदि कुछ किये बिना ही चले गये तो फिर बार–बार मिलने वाला नही है। अन्तत पश्चात्ताप ही हाथ मे रह जाएगा।

रत्न परीक्षक-पहला जौहरी

मानव जीवन की दुर्लभता को स्पष्ट करने के लिये मैं आपको जौहरियो का एक रूपक सुना देता हू। प्राचीनकाल मे वाहनो का अभाव होने से व्यापारी वर्ग पैदल यात्रा किया करते थे। एक जवाहरात का व्यापारी, व्यापार के लिये दूर प्रदेश की यात्रा कर रहा था। उसी यात्रा के दौरान वह एक गाव पहुचा और भोजन सामग्री के लिये किसी वणिक की दुकान मे गया। वहा उसे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि बनिये के तराजू पर एक चमचमाता सवा लाख का हीरा बधा हुआ है। जौहरी सोचने लगा– यह बुद्धू हीरे के महत्त्व को नही समझता है, यदि जानता होता तो इस प्रकार नही बाधता। वास्तव मे बनिये को भी यह मालूम नहीं था कि तराजू पर बधा पत्थर बहुमूल्य हीरा है। उसने तो एक किसान गडरिये से दो चिमटी तम्बाकू मे उसे लिया था। गडरिये को जगल मे चमचमाता पत्थर मिला। उसने उस पत्थर को यह सोचकर रख लिया कि सेठो के लडके खिलौनो से खेलते हैं। मेरी स्थिति यह नही है कि मेरे बच्चो के लिये भी खिलौने खरीद कर ला सकू। मेरे बच्चे इस पत्थर से खेलेगे। किन्तु जब वह बनिये की दुकान पर दाल–आटा लेने पहुचा तो बनिये ने तराजू की कण ठीक करने के लिये उससे वह पत्थर मागा। ज्योही तराजू मे पत्थर रखा गया, त्योही कण बराबर हो गई। रोज–रोज की झझट मिटाने के लिये बनिये ने दो चिमटी तम्बाकू देकर वह पत्थर खरीद लिया और तराजू के बाध दिया।

जौहरी ने खाद्य सामग्री को लेने के साथ ही बनिये से पूछा– क्यो भाई! इस को तुम बेच सकते हो?

बनिये ने कहा— क्यो नही जरूर। मैं तो व्यापारी हू। व्यापारी तो थाली मे परोसी रोटी को भी समय पर बेच देता है। अच्छा तो बताओ, तुम इस पत्थर के कितने पैसे लोगे ? जौहरी के पूछने पर बनिये ने सोचा— जरूर यह पत्थर कोई साधारण पत्थर नही है। अन्यथा यह व्यक्ति इसे खरीदने की बात नही करता। उसने सोच कर कहा— मै इसके पाच रुपये लूगा। जौहरी ने कहा— नही। इसके चार रुपये ले लो। बनिया बोला— नही, मैं पाच रुपये से एक पैसा कम नही लेता। जौहरी यह सोचकर चला गया कि इसे दूसरा कौन ले जाने वाला है। अभी तो भोजन कर लू बाद मे आकर चार रुपये मे देगा तो ठीक अन्यथा पाच रुपये मे लूगा।

पहले जैसा दूसरा

सयोग की बात है— कुछ ही समय के बाद एक दूसरा जौहरी भी उसी गाव मे आ पहुचा और वह भी भोजन सामग्री लेने के लिये उसी बनिये की दुकान पर गया। उसने भी जब उस पत्थर के मूल्य के विषय मे पूछा तो बनिये ने सोचा— वास्तव मे यह पत्थर बहुत अधिक कीमती है उसने उसके दस रुपये बतलाए। इस जौहरी ने भी उसे एक रुपया कम कर नौ रुपये लेने के लिये कहा तो वह टस से मस नहीं हुआ। यह जौहरी भी पहले वाले जौहरी की तरह 'बाद मे आकर ले जाऊगा इसे दूसरा कौन ले जाने वाला है।' सोचकर भोजन के लिये चला गया।

दूसरे जैसा तीसरा

कुछ ही समय बीतने के बाद एक तीसरा जौहरी भी उसी गाव मे पहुचा और वह भी भोजन सामग्री के लिये उसी बनिये की दुकान पर गया। उसने भी जब उस चमचमाते हीरे को देखा तो उससे खरीदने के लिये बनिये से मूल्य पूछा। इस बार बनिया और अधिक विचार मे पड गया। बात क्या है— इस पत्थर मे जरूर कुछ न कुछ करामात है, तभी तो एक के बाद एक तीन व्यक्ति इसे खरीदने के लिये आ पहुचे। पहले वाले को पाच रुपये के लिये कहा तो वह चार रुपये देने के लिए तैयार हो गया। दूसरे को दस रुपये के लिये कहा तो वह नौ रुपये देने के लिये तैयार हो गया। अत इस व्यक्ति से और अधिक रुपये मागना चाहिये। यह सोच कर बनिये ने कहा— इसके पन्द्रह रुपये लूगा। उसने भी चोदह रुपये देने को कहकर 'बाद मे आकर पूरे दे जाऊगा' —यह सोच कर वह भी भोजन करने के लिये चला गया।

चौथा सबसे विलक्षण

कुछ ही समय और बीतने के बाद चौथा रत्नो का व्यापारी भी सयोग से उसी गाव के, उसी बनिये की दुकान पर भोजन सामग्री लेने के लिए पहुच गया। इसने भी जब उसी पत्थर रूपी हीरे को देखा तो उसकी कीमत के विषय मे पूछा। इस बार तो बनिये ने आव देखा न ताव और सीधे ही इक्कीस रुपये माग लिये। यह चौथा व्यापारी विलक्षण था। उसने सोचा मोल–भाव करने का समय नही है। उसने तुरन्त इक्कीस रुपये देकर उस पत्थर रूप सवा लाख रुपये के हीरे को खरीद लिया और बहुत खुश होता हुआ अपने शहर की ओर चला गया।

हानि में, मैं नहीं, तुम रहे

अब बन्धुओ! पहला व्यापारी खा–पीकर मस्ती के साथ बनिये की दुकान पर पहुचा और बोला– लो पाच रुपये ले लो और वह पत्थर दे दो। इतने मे ही दूसरी दिशा से दूसरा जौहरी आ पहुचा। वह बोला– लो दस रुपये ले लो और वह पत्थर मुझे दे दो। दोनो जौहरी सघर्ष करने लगे। एक बोला, मैंने पहले मोल किया है इसलिये मैं लूगा, तो दूसरा बोला– नही मैं तुम्हारे से अधिक रुपये दे रहा हू, इसलिये मैं लूगा। इनके सघर्ष के बीच मे तीसरा रत्न व्यापारी भी, भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर बहुत लाभ की खुशी मे झूमता हुआ बनिये की दुकान पर आ पहुचा और चिल्लाने लगा– लो, मैं पन्द्रह रुपये देता हू– वह पत्थर मुझे दे दो। तीनो जौहरी पत्थर की माग करने लगे। एक कहता है, मै लूगा तो दूसरा गरजता है, नहीं में लूगा। इतने मे तीसरा चिल्लाता है, मैं लूगा। तीनो मे जोरदार सघर्ष होने लगा। उनके इस सघर्ष को देखकर बनिया बोला– तुम लडते क्यो हो? जिस पत्थर के लिये तुम लड रहे हो, वह तो मैंने कभी का ही बेच दिया।

ज्योही जौहरियो ने रत्न के बिक जाने की बात सुनी त्योही होश उड गए। झगडा स्वत समाप्त हो गया। सच है– एक कौए के मुह मे मास का टुकडा रहेगा तो सभी कौए लेने के लिये टूट पडेगे। और ज्योही वह समुद्र मे गिर जाता है तो सबका झगडा समाप्त हो जाता है। यही ससार की स्थिति है। सभी धन के टुकडो के लिये दौड रहे है। सघर्ष कर रहे हैं। भाई, भाई को मारने के लिये तैयार है। कितना ही किया जाय पर धन कभी स्थायी नहीं रहने वाला है।

उन रत्न व्यापारियो ने बनिये से पूछा– तुमने उसको कितने मे बेचा?

बनिये ने कहा– पूरे इक्कीस रुपये मे।

तीनो व्यापारी बोले तुम तो ठगा गए। अरे! वह तो पूरे सवा लाख रुपये का बहुमूल्य हीरा था।

बनिया बोला– मैं नही, तुम लोग ठगा गए। मैं तो उस हीरे के मूल्य से अनभिज्ञ था किन्तु तुम तो सब जानते थे। फिर भी मोल–भाव करके छोड कर चले गये। इसलिये मै नही, तुम लोग ठगा गए।

वे सभी व्यापारी रत्न के चले जाने से पश्चात्ताप करते हुए अपने–अपने स्थान पर लौट गये।

वास्तव में हानि में कौन?

सुज्ञ बन्धुओ! यह तो एक रूपक है। आपको तरस आ रही होगी उन व्यापारियो पर, जो मोल–भाव करते रह गये और उस बहुमूल्य रत्न को गवा दिया। किन्तु क्या यह भी सोचा कि कहीं हमारी हालत तो ऐसी नही हो रही है? मानव जीवन रूप अमूल्य रत्न आपको मिला है। इस रत्न के द्वारा परम सुख को प्राप्त करने के लिये मुनि–जन बराबर उपदेश दे रहे हैं लेकिन अभी नहीं, बाद मे धर्म–ध्यान कर लेगे– इस प्रकार सोचते हुए अमूल्य मानव जीवन को कहीं खो तो नहीं रहे हैं? जब हीरा हाथ से चला जायगा तो उन व्यापारियो की तरह पश्चात्ताप ही हाथ मे रह जायेगा। वह हीरा तो फिर मिल सकता है, किन्तु मानव जीवन रूप हीरे का पुन मिलना बहुत मुश्किल है।

अब भी समय है जगने का, जागिये और इस अमूल्य जीवन मे मुक्ति रूपी परम सुख को पाने के लिये आगे बढिये। भगवान महावीर का कहना है–

समय गोयम मा पमायए।

क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करिये। आप लोगो को भी उन व्यापारियो की तरह पश्चात्ताप नहीं करना पडे इसलिये परम शाति को पाने के लिये धर्म–ध्यान मे प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

जो भी भव्य आत्मा इस दुर्लभ मानव जीवन को पाकर अपनी क्रियावती शक्ति को आत्मोत्कर्ष की ओर नियोजित करेगी वह निश्चित ही परम शाति प्राप्त करेगी।

OOO

कर्म विमुक्ति में सहायक-पुण्य

- कर्मो का विविध रूप
- कर्म पहले या आत्मा
- कर्म–आत्मा का अनादि सम्बन्ध
- अपुनर्भाव से कर्म विजेता शीतल भगवत
- पुण्य व्याख्या अन्नदान
- जलदान
- पानी के अभाव मे महाप्रयाण
- टकी का पानी धोवन नही है
- स्थान दान, वस्त्र दान, मन पुण्य, वचन पुण्य, काय पुण्य, नमस्कार पुण्य
- पाप की तरह पुण्य हेय नही है
- पुण्य के तीन रूप–हेय, ज्ञेय, उपादेय
- शक्ति और व्यक्ति
- त्रिभुवन प्रभुता निर्ग्रन्थता
- योगी और भोगी
- वक्ता और मौनी
- अनुपयोगी और उपयोगी

नवविहे पुण्णे पण्णत्ते–अन्न पुण्णे, पाण पुण्णे, लेण पुण्णे, सयण पुण्णे, वत्थ पुण्णे, मन पुण्णे, वइ पुण्णे, काय पुण्णे, नमोक्कार पुण्णे।

–ठाणाग सूत्र – ठाणा–9

नव प्रकार का पुण्य प्रज्ञप्त किया गया है– अन्न पुण्य, पान पुण्य, लयन (स्थान) पुण्य, शयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य, काय पुण्य, नमस्कार पुण्य।

निस्वार्थ भाव से दिया अन्नादिक दान पुण्य की कोटि मे आता है। दान, शील, तप, भाव रूप शुभ चिन्तन करना, प्रभु स्तुति, मधुर वचन बोलना, अहिसादिक की अनुपालना तथा अधिक गुणगान महापुरुषो के नमस्करण से भी पुण्यार्जन होता है। सस्कृत भाषा मे पुण्य की परिभाषा इस प्रकार की गई है– "पुनाति पवित्री करोत्यात्मा नमिति पुण्यम्।" जो आत्मा को पवित्र करता है उसे पुण्य कहते हैं।

○○○

शक्ति व्यक्ति त्रिभुवन–प्रभुता,
निर्ग्रन्थता सयोग रे।
योगी भोगी वक्ता मौनी,
अनुपयोगी उपयोगी रे।।शीतल।।

कर्मो का विविध रूप

बधुओ! ससार की अनन्त–अनन्त आत्माए चार गति–चौरासी लाख योनियो मे परिभ्रमण कर रही हैं। सभी आत्माओ का मौलिक स्वरूप एक समान होते हुए भी कर्मो के कारण विविध विचित्रताए परिलक्षित होती हैं। ये विचित्रताए विभिन्न योनियो की अपेक्षा से ही नही, अपितु एक–एक योनिगत जीवो मे भी बहुत विचित्रताए दृष्टिगत होती हैं। मनुष्य योनि को ही लीजिये– एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से आकार–प्रकार, रूप–रग, चाल–ढाल, स्वभाव आदि की अपेक्षा से भी कितना अन्तर पाया जाता है। यही नही, एक माता के उदर से युगपद् (एक साथ) उत्पन्न दो बच्चो मे भी अधकार–प्रकाश जैसा अन्तर पाया जाता है। इन सब का अदृष्ट कारण कर्म के अतिरिक्त अन्य नही हो सकता।

कर्म पहले या आत्मा

कर्म की इस प्रकार की विचित्रता को देखकर सहज ही कुछ प्रश्न प्रस्फुटित हो उठते हैं कि अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्माओ से यह कर्म का सम्बन्ध कब से चला आ रहा है? कर्म का पहले उद्भव हुआ या आत्मा का? यदि कर्म का पहले उद्भव हुआ तो उसका आत्मा से सम्बन्ध क्यो हुआ क्योकि आत्मा उस समय विशुद्ध रूप मे थी। यदि विशुद्ध अवस्था मे भी कर्म का सम्बन्ध हुआ माना जाय तो फिर सिद्धों मे भी क्यो नही होता? ऐसे अनेक प्रश्नो की लम्बी कतार कभी–कभी सामान्य मानस को झकृत कर देती है। यद्यपि ये सब दार्शनिक विषय हैं। इनकी चर्चा भी गहन, गम्भीर एव विश्लेषणात्मक है तथापि ऐसी जिज्ञासाओ का समाधान भी आवश्यक है। मैं अभी उन गम्भीर विषयो की विशद चर्चा मे न उतर कर आपको एक शास्त्रीय रूपक से उनका समाधान करने की चेष्टा करता हू।

भगवती सूत्र मे प्रथम शतक के छठे उद्देशक मे रोहा अणगार के प्रश्नो का वर्णन आता है। रोहा अणगार ने भगवान महावीर से अनेक प्रश्न

पूछे थे। उनमे से एक प्रश्न यह भी था—

पुव्वि भते जीवा पच्छा अजीवा, पुव्वि अजीवा पच्छा जीवा?

रोहा। जीवा य अजीवा य पुव्वि पेते, पच्छापेते दोवि, ए सासया भावा, अणाणपुव्वी?

पुव्वि भते। अडए पच्छा कुक्कुडी? पुव्वि कुक्कुडी पच्छा अडए?

रोहा। से ण अडएकओ?

भयव कुक्कुडी ओ?

साण कुक्कडी कओ?

भते। अडयाओ।

एव मेव रोहा से य अडए साय कुक्कुडी पुव्वि पेते पच्छावेते दो वि एएसासया भावा, अणाणुपुव्वी एसारोहा।

अर्थ— रोहा अणगार ने पूछा— भगवन्। पहले जीव है, बाद मे अजीव है या पहले अजीव है और बाद मे जीव है?

प्रभु ने रोहा अणगार के प्रश्न को समाहित किया— रोहा। जीवाजीव मे आनुपूर्वी भाव नही है। जीव, अजीव पहले भी हैं, पीछे भी। ये दोनो शाश्वत भाव रूप हैं।

रोहा अणगार ने जिज्ञासा का स्पष्ट समाधान पाने के लिये एक व्यावहारिक प्रश्न किया— भगवन् अडा पहले है या कुक्कुटी? कुक्कुटी पहले है या अडा?

भगवान् ने प्रतिप्रश्न किया— रोहा— वह अडा कहा से आया?

रोहा अणगार— भगवन् कुक्कुटी से।

भगवान्— रोहा। कुक्कुटी कहा से आयी?

रोहा— भगवन् अडे से।

अत हे रोहा। अडे और कुक्कुटी मे पहले या वाद मे की स्थिति नहीं है। दोनो ही प्रवाह रूप से शाश्वत हैं।

सुज्ञो। भगवान् ने वहुत सहज रूप मे समाधान प्रस्तुत किया। जिस प्रकार अडे एव मुर्गी की उद्भूति के विषय मे किसी को भी प्राथमिकता नही

दी जा सकती। इन दोनो का सम्बन्ध अनादिकालीन होते हुए भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को विच्छिन्न किया जा सकता है। उसी प्रकार आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादिकालीन है। इस प्रकार की अनादिता के होते हुए भी इनका पारस्परिक सम्बन्ध विनष्ट हो सकता है। शाश्वत तत्त्वो मे समूलत उत्पाद विनाश नही होता। चैतन्य तत्त्व शाश्वत है। अत इसकी उत्पत्ति का तो कोई प्रश्न ही नही है। जब चेतना की उत्पत्ति ही नही होती तो उसका अवसान भी नही हो सकता।

कर्म-आत्मा का अनादि सम्बन्ध

स्वर्ण और मिट्टी का सम्बन्ध अनादिकालीन परिलक्षित होते हुए भी प्रयत्न विशेष से उन्हे अलग-अलग किया जा सकता है। विद्युत् युक्त पदार्थों मे विद्युत् कब से रही हुई है? यह कोई नही कह सकता तथापि विद्युत् पृथक्करण किया जा सकता है। ठीक इसी प्रकार आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादिकालीन होते हुए भी आत्मोत्कर्ष द्वारा आत्मा का पवित्र स्वरूप निखारा जा सकता है। कर्म के सम्बन्ध को अपुनर्भाव से अलग कर दिया जाता है जिससे पुन कभी कर्मो का बन्धन नही हो। जिस प्रकार बीज को जला देने से उसके उत्पन्न होने की शक्ति नष्ट हो जाती है उसी प्रकार कर्म बीज के दग्ध हो जाने पर पुन कर्म बन्धन की स्थिति नही आती।

जैसा कि शास्त्रकारो ने कहा है–

जहा दड्ढाणं बीयाणं ण जायति पुन अकुरा

कम्म बीएसु दड्ढेसु न जायति भवकुरा।।

बीज के जल जाने पर उससे नवाकुर प्रस्फुटित नही हो सकता। वैसे ही कर्म रूपी बीजो के दग्ध हो जाने पर जन्म-मरण रूपी अकुर फूट नही सकता।

अपुनर्भाव से कर्म विजेता शीतल भगवत

जिन महाप्रभु शीतलनाथ भगवान् की स्तुति का प्रसग आपके समक्ष चल रहा है उन नरपुगव ने अपने सत्पुरुषार्थ के द्वारा अपुनर्भाव से कर्मों को अपनी आत्मा से विलग कर दिया था। इस विलगीकरण से उनकी आत्मा मे जो अनन्त शाति अभिव्यक्त हुई उसका विवेचन कवि ने बहुत ही विलक्षण भाषा मे व्यक्त किया है।

एक तरफ वे समान शक्तिसम्पन्न होते हुए भी अपने व्यक्तित्व की अपेक्षा से अलग है। त्रिभुवन के नाथ होते हुए भी निर्ग्रन्थ हैं। योगी होते हुए भी भोगी हैं। वक्ता होते हुए भी मौनी हैं। उपयोगवान होते हुए भी अनुपयोगी हैं। परस्पर विरुद्ध लगने वाले गुण भी शीतल जिनपति की आत्मा मे विद्यमान हैं। ऐसे तीर्थकर महापुरुषो का गुणगान कर भव्यात्माए महान् कर्म निर्जरा के साथ पुण्यवानी का अर्जन भी करती है।

पुण्य व्याख्या : अन्नदान

शास्त्रकारो ने पुण्य की व्याख्या नव प्रकार से व्याख्यायित की है। नव विहे पुण्णे पण्णते– अन्नपुण्णे, पाण पुण्णे, लेण पुण्णे, सयण पुण्णे, वत्थपुण्णे, मणपुण्णे, वइ पुण्णे, काय पुण्णे, नमोक्कार पुण्णे।

पुण्य नव प्रकार के हैं– अन्न पुण्य, पान पुण्य, लयन पुण्य, शयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य काय पुण्य, नमस्कार पुण्य।

नव विध पुण्य मे सबसे पहला अन्न पुण्य बतलाया है। अन्नादि पदार्थ शुभ भावना के साथ दिये जाने पर अन्न पुण्य का प्रसग बनता है, उसमे पात्र भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। सुपात्र दान के पात्र भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार के होते हैं तथा अनुकम्पा दान भी दिया जा सकता है। किस प्रसग पर किन भावो के साथ किस पात्र को, किस रूप मे दिया जाता है, उन भावो की तारतम्यता के आधार पर पुण्यार्जन के साथ–साथ आत्मशुद्धि रूप निर्जरा भी होती है। यही स्थिति सभी पुण्य के भेदो मे बनती है। जब कभी साधु–साध्वी गोचरी के लिये घरो मे पहुचते हैं तो उन्हे बहराने के लिये छोटे–छोटे बच्चे उछलने लगते हैं। दान देने की उत्कृष्ट भावना उनके मन मे हिलोरे लेने लगती है। ऐसे बच्चे माता–पिता आदि के द्वारा सस्कारित होते हैं। वे सहज ही महान् पुण्यानुबध कर लेते हैं। शालिभद्र की आत्मा ने पूर्व भव मे सत–महापुरुषो को उत्कृष्ट भावना से आहार–दान दिया था। परिणामस्वरूप महान् पुण्यानुबध किया। इतनी विशाल ऋद्धि–समृद्धि को प्राप्त किया कि सम्राट श्रेणिक का वेभव भी उसके सामने फीका था।

जलदान

जलदान से पुण्यार्जन होता है। दाता निस्वार्थ भावना से विविध रूप मे जलदान देते हैं। पच महाव्रतधारी साधक को दिये जाने वाले जल का दान

तो धर्म के साथ–साथ महान् पुण्यबध कराने वाला होता है। पच महाव्रत धारी साधु कुएँ बावडी आदि के सचित्त जल को पीने की बात तो दूर रही, उसको सपर्श भी नही करते। उनके लिये तो बीस प्रकार का धोवन रूप अचित्त पानी या उष्ण पानी ही एषणीय रूप मे उपयोग मे आता है, और वह भी उनके लिए बनाया हुआ नही हो।

बर्तन आदि तो प्राय सभी घरो मे धुलते हैं। इन बर्तनो का धोया पानी राख के स्पर्श से अचित्त हो जाता है। इस प्रकार दुग्ध के बर्तनो को, छाछ के बर्तनो को धोने से भी पानी निर्जीव हो जाता है। दाल का पानी, चावल का पानी, दाख का पानी आदि अनेक प्रकार से धोवन पानी आप लोगो के घरो मे सहज रूप से प्राय प्रतिदिन बनता है। उस पानी को एकत्रित करने का विवेक रख लिया जाय तो समय पर किन्ही सत महापुरुषो के पधारने पर आप पानी बहरा कर महान् पुण्य का बन्धन कर सकते हैं। क्योकि आहार तो कही पर भी उपलब्ध हो सकता है, धोवन–पानी की उपलब्धि मे गृहस्थ को विवेक होना आवश्यक है।

हर सद्गृहस्थ का कर्तव्य हो जाता है कि साधु–साध्वी गाव या शहर मे चाहे हो या न हो, किन्तु सहज रूप मे तैयार हुए पानी का विवेक रखे तो न मालूम किस समय सत–मुनिराज पधार जाये और आपको जलदान का महान् लाभ मिल जाय। सत–मुनिराज पधारे या न पधारे, अगर आपके घर मे धोवन पानी सुरक्षित होगा तो जितनी बार आपकी दृष्टि उस बर्तन की ओर जायेगी उतनी बार आपके मन मे शुभ भावना आयेगी कि धोवन–पानी पडा है, कोई मुनिराज पधारे तो उनके उपयोग मे आ जाय। इस भावना से भी आप पुण्यानुबध करेगे। कभी–कभी तो साधु जीवन मे ऐसे समय भी आते हैं कि जब अचित्त, प्रासुक जल के अभाव मे तृषा–परीषह को सहन करते–करते साधक परलोक की यात्रा पर प्रयाण कर जाते हैं।

पानी के अभाव में महाप्रयाण

एक बार स्वर्गीय गुरुदेव शात क्रान्ति के जन्मदाता आचार्यश्री गणशीलालजी म सा सरदारशहर वर्षावास के लिये बीकानेर से थली प्रान्त की ओर विहार कर रहे थे। गरमी का समय था। थली प्रात मे प्रासुक पानी सहज रूप से उपलब्ध नही होता था। आचार्य प्रवर आदि सतगण का सभी परीषहो को सहन करते हुए विहार चल रहा था। छ सत होने से सुविधा के

लिये दो विभाग कर दिये गये थे। आचार्य प्रवर आदि तीन सत विहार करते हुए डूगरगढ पहुच गये। तीन सत एक गाव पीछे थे। वहा गवेषणा करने पर भी प्रासुक पानी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध नही हुआ। स्वल्प पानी से तीनो मुनियो की तृषा शात होना सम्भव नही थी। सूर्य पर कुछ बादल थे, अत तीनो मुनिवर मध्याह्न मे ही यह सोचकर आगे बढ गये थे कि तीन कोस की दूरी पर डूगरगढ मे युवाचार्यश्री (आचार्य प्रवर) विराजमान हैं, वहॉ प्रासुक पानी मिल जायेगा। कुछ दूर चले होगे कि बादलो के हट जाने से सूर्य प्रचण्डता के साथ तपने लगा। धरती तप्त हो चुकी थी— तथापि तीनो मुनिवर दृढता के साथ आगे बढ रहे थे। किन्तु वयोवृद्ध मुनिवर श्री मोतीलालजी म सा को डूगरगढ के डेढ कोस दूर रहते चक्कर आने लगे। कण्ठ सूखने लगे, घबराहट बढ रही थी, उन्होने अपनी स्थिति का भान साथी मुनियो को कराया। परिस्थिति की गम्भीरता पर विचार कर उन मुनियो मे से एक मुनि तो पानी लेने के लिये डूगरगढ की ओर बढ गये और एक मुनि वृद्ध मुनिश्री को एक खेजडी की छाया मे विश्रान्ति के लिये ले गये। इधर आचार्य प्रवर का डूगरगढ से विहार हो चुका था। जब मुनिश्री पानी के लिये शहर मे पहुचे, इधर—उधर जैनी भाइयो से पूछा तो न तो उन्होने आचार्य प्रवर के विराजने का स्थल ही बतलाया, न ही प्रासुक पानी ही बहराया, किन्तु हॅसी—मजाक करने लगे। मुनिश्री धैर्य के साथ आगे बढ गये तो आशारामजी झवर का मकान आ गया। उन्होने मुनिराज को भक्ति भाव से अपने यहा सहज रूप से उपलब्ध धोवन पानी बहराया। मुनिश्री पानी लेकर पुन वयोवृद्ध मुनिश्री के पास शीघ्रता के साथ पहुचने लगे— वे लगभग फर्लांग—डेढ फर्लांग दूर रहे होगे, इसी बीच वयोवृद्ध मुनिश्री मोतीलालजी म ने सथारापूर्वक प्राण त्याग दिये। यह होती है सयम के प्रति दृढता। प्राण चले जाये पर सयम की मर्यादाओ को नही तोडना।

सज्जनो! ऐसी विकट परिस्थिति मे सतो को प्रासुक पानी की शीघ्र उपलब्धि हो जाती तो सम्भव है मुनिश्री का जीवन बच जाता। किन्तु कई लोगो ने धर्म का वास्तविक स्वरूप नही समझने के कारण पानी न वहरा कर उन मुनिश्री की मजाक की। खैर उससे मुनिश्री के तो कर्मो की निर्जरा ही हुई किन्तु उन भाइयो ने तो कर्मो का वधन किया। यह तो एक ऐतिहासिक घटित घटना का यथार्थ चित्रण है। मेरा तो आपसे यह कहना हे कि आप सहज रूप से वनने वाले प्रासुक पानी का विवेक रखे तो जलदान के महान् पुण्य से लाभान्वित हो सकते हैं।

टंकी का पानी धोवन नहीं है

वर्तमान युग मे ऐसा तर्क भी सामने आता है कि आजकल टकी से फिल्टर होकर आने वाला पानी अचित्त निर्जीव हो जाता है। अत साधक सीधा नल से भी पानी ले सकता है। किन्तु बन्धुओ! विचारणीय विषय यह है कि टकी से बनने वाले फिल्टर पानी की निर्जीवता सदिग्ध है। दूसरी बात, नलो मे तो पानी पहले के दिनो का भरा रहता है। कही-कही तो कई दिनो तक पानी नलो के मोड मे रह जाने से अनन्तकालिक जीवो की भी उत्पत्ति हो जाती है। नया आने वाला पानी इस सजीव पानी से मिलकर आने से नल के पानी की परिपूर्ण निर्जीवता तो रह ही नही सकती। साधु के लिये परिपूर्ण रूप से प्रासुक पानी ही उपादेय है। भगवान् ने धोवन पानी लेने का विधान किया है। धोवन से तात्पर्य बर्तन आदि को धोने से जो पानी तैयार होता है उसे धोवन कहते हैं। अत टकी का पानी धोवन नही है। इन अनेक कारणो से नल का पानी साधु के लिए कतई ग्राह्य नही है। यदि कोई साधक ऐसा पानी ग्रहण करता है तो उसका अहिसा महाव्रत सुरक्षित नही रह सकता।

स्थान दान

पुण्य का तीसरा भेद लयन पुण्य है। मकान आदि का दान लयन पुण्य मे आता है। साधु को ठहरने के लिये मकान देने वाला शय्यातर महान् पुण्य का अर्जन करता है। क्योकि मकान देने वाला गृहस्थ गौण रूप से सत-मुनिराजो को अन्न, जल ही नही, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि बहुत कुछ देता है। उसके द्वारा दिया गया मकान मुनिराजो की सयमाराधना मे सहायक होता है। यह तो सत-मुनिराजो के लिये स्थान देने की बात हुई। स्वधर्मी आदि बन्धुवो को आश्रय देने से भी पुण्य बध होता है। यही नहीं, समझ लीजिये, आप यहा पर बैठे हैं, व्याख्यान श्रवण कर रहे हैं। जन-समुदाय के अधिक हो जाने से स्थान की सकुचितता का प्रसग है। ऐसे समय मे किसी का घुटना अपने घुटने से अड गया और गुस्सा आ गया तो वहा कर्म बधन की स्थिति बन जाती है। ऐसे ही प्रसगो पर जो अपने अगो को सकुचित करके दूसरो को बैठने का स्थान देता है तो वह पुण्यार्जन कर लेता है।

शयन दान

पुण्य का चौथा भेद है- पाट पाटले शय्या सस्तारक आदि का दान करने से शयन पुण्य का प्रसग बनता है।

वस्त्र दान

पुण्य का पॉचवा भेद वत्थ पुण्य का है। वस्त्र देने से पुण्य होता है। दीन–हीन प्राणियो को नि स्वार्थ शुभ भाव से वस्त्र देने पर भी पुण्यार्जन का प्रसग बन जाता है। मैंने ऐसा सुना है, रायपुर के सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी धारीवाल शीतकालीन ऋतु मे रात्रि मे बाजारो मे पहुचते तथा फुटपाथ पर पडे व्यक्तियो पर गर्म वस्त्र डालकर आगे बढ जाते। यह उनका रोज का क्रम था। वे दान देकर भी उसे गुप्त रखना चाहते थे। इस प्रकार दिया जाना वाला वस्त्र दान, वस्त्र पुण्य की कोटि मे आता है।

मन: पुण्य

छठा भेद है– मन मे पवित्र भावना रखने से तथा निस्वार्थ भाव से समस्त प्राणियो के प्रति अनुकम्पापरक आत्मीय भावना रखने से मन पुण्य की स्थिति बनती है।

वचन पुण्य

सातवा भेद है– निस्वार्थ भाव से मुह से पवित्र मधुर शब्द बोलने से, पच परमेष्ठी का गुण–गान करने से वचन पुण्य का प्रसग बनता है।

काय पुण्य

आठवा भेद है– निस्वार्थ भाव से काया द्वारा किसी की सेवा करने से काय पुण्य होता है।

नमस्कार पुण्य

नववा भेद है– निस्वार्थ भाव से विशिष्ट पुरुषो को वन्दन नमस्कार करने से पुण्य होता है।

पाप की तरह पुण्य हेय नहीं है

पुण्य की बहुत ही सक्षिप्त व्याख्या में आपके समक्ष रख पाया हूँ। यह पुण्य भी कर्म–विमुक्ति मे सहायक होने से उपादेय हे। कई साधक पाप की तरह पुण्य को सोने की बेडी बताकर हेय बतला देते हें। किन्तु शास्त्रकारो की दृष्टि मे पाप की तरह पुण्य हेय नही हे। भगवती सूत्र के शतक एक उद्देशक चार मे कहा है–

नेरइयस्स वा तिरिक्ख जोणियस्स वा, मणुसस्स वा, देवस्स वा जे

कडे पाव कम्मे, नत्थि तस्स अवेयइत्ता मोक्खो ? नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव द्वारा कृत पाप कर्म है, इसका वेदन किये बिना इनसे छुटकारा नही होता।

उपर्युक्त सूत्र मे पापकर्म को बाधक बतलाया है। शास्त्रकारो की दृष्टि मे पाप की तरह ही पुण्य भी मुक्ति मे बाधक होता तो शास्त्रकार पाप के साथ ही पुण्य का भी कथन कर देते, किन्तु शास्त्रकारो ने ऐसा नही किया है। करते भी कैसे ? क्योकि शास्त्रकारो के ज्ञानालोक मे पाप की तरह पुण्य एकान्तत हेय नही है।

पाप कर्म की प्रकृतियो का तो 10 गुणस्थान के बाद विच्छेद हो जाता है, किन्तु पुण्य प्रकृति का बन्ध आगे के गुणस्थान तक चलता रहता है। अत स्पष्ट है कि पाप की तरह पुण्य भी हेय नही है।

पुण्य के तीन रूप · हेय, ज्ञेय, उपादेय

पुण्य, आत्मा के लिये हेय, ज्ञेय और उपादेय तीनो हैं। इसका स्पष्टीकरण करने के लिये मैं नाव का रूपक दिया करता हूँ– कोई व्यक्ति समुद्र पार करने के लिये तट पर पहुँचा तो उसने देखा, दो प्रकार की नावे पडी हैं। एक पत्थर की तो दूसरी काष्ठ की। वह व्यक्ति विवेकशील प्रज्ञा से चिन्तन कर पत्थर की नाव को छोडकर काष्ठ की नाव पर बैठता है और समुद्र पार करने लगता है। जब तक किनारा नही आ जाय तब तक नाव को नही छोड सकता। यदि मध्य मे वह यह सोचकर नाव को छोड दे कि किनारा आने पर तो नाव छोडनी ही पडेगी क्यो न अभी ही छोड दिया जाय तो वह किनारे पहुँचे बिना ही समुद्र मे डूब जाएगा। अत उस व्यक्ति के लिये नाव, उस किनारे तक ग्राह्य है, किनारे पर पहुँचने के बाद त्याज्य है। यह तो एक उदाहरण है।

पुण्य कर्म की स्थिति भी इसी प्रकार है– बन्धुओ। ससार समुद्र को पार करने वाली भव्य आत्माओ के समक्ष पाप और पुण्य की, पत्थर एव काष्ठ के समान दो नावे पडी है। भव्य आत्माए इन दोनो नावो का ज्ञेय दृष्टि से ज्ञान कर हेय दृष्टि से पत्थर की नाव के समान पाप को छोड, उपादेय प्रज्ञा से काष्ठ की नाव के समान पुण्य को ग्रहण कर लेती है। यह पुण्य का ग्रहण ससार समुद्र के उस पार पहुँचने तक चलता है। अत पुण्य को पाप की तरह ही हेय नही मानना चाहिये।

शक्ति और व्यक्ति

मुक्ति रूप परम मजिल को पाने के लिये साधक पुण्यार्जन भी करता हे। उपर्युक्त पुण्य की नव विधा मे वचन पुण्य भी बतलाया है। जिनेश्वर भगवतो के गुण–गान करने से भी पुण्य बध होता है। कवि आनन्दघनजी ने भी शीतल जिनपति की स्तुति बडी ही विलक्षण प्रकार से की है। उस स्तुति मे सराबोर होने के लिये उसका कुछ हार्द समझना भी आवश्यक है–

शक्ति व्यक्ति, त्रिभुवन प्रभुता,
निर्ग्रन्थता सयोग रे।
योगी–भोगी, वक्ता–मौनी,
अनुपयोगी–उपयोगे रे।। शीतल।।

वीतराग देव अनन्त आत्म वीर्य (शक्ति) से सम्पन्न हैं। उनकी शक्ति इतनी सबल है कि यदि मेरु पर्वत को उठाना हो तो वे उठा सकते है। भुज बल से अथाह समुद्र को भी पार कर सकते है। यही नहीं, सम्पूर्ण लोक को उठाकर गेद की भॉति अलोक मे फेक सकते हैं। यह सब प्रभु की शक्ति को अभिव्यक्त करने के लिये है। वीतराग देव त्रिकाल मे भी ऐसा कभी नही करते। ऐसे परमात्मा मे ज्ञानादि शक्तियो का पूर्ण व्यक्तिकरण अलग–अलग रूप मे होता है। व्यक्ति से यह तात्पर्य भी लिया जा सकता है कि ससारी प्राणियो से परम स्वरूप परमात्मा विलक्षण होने से, वे विशिष्ट व्यक्ति हैं। इस प्रकार तीर्थंकर देव शक्तिवान् होने के साथ ही विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी हैं।

त्रिभुवन प्रभुता . निर्ग्रन्थता

चोंतीस अतिशय एव अष्टमहाप्रतियो से युक्त होने से त्रिभुवन के स्वामी हैं। दूसरी दृष्टि से इसका अर्थ लिया जाये तो परमात्मा मे आत्मा के समस्त गुण अभिव्यक्त हो चुके हे, अत समस्त आत्माओ के स्वामी हैं। त्रिभुवन प्रभुता के साथ ही प्रभु ससार के समस्त मोह वन्धनो को त्याग कर, पच महाव्रतो को ग्रहण कर अकिचन भाव मे रमण कर रहे हैं, इसलिये प्रभु मे निर्ग्रन्थता का गुण भी हे।

योगी और भोगी

वडा आश्चर्य होगा, आपको सुनकर कि भगवान् योगी होते हुए भी भोगी है। अरे! योग ओर भोग परस्पर मे विल्कुल विरुद्ध हैं। जहा योग होता

है वहा भोग कैसे हो सकता है और जहा भोग होता है वहा योग कैसे हो सकता है? जैन धर्म की यही विशेषता है कि वह परस्पर विरुद्ध प्रतिभासमान गुणो मे भी स्याद्वाद सिद्धान्त के द्वारा सामजस्य बना देता है। शीतल जिनपति मे मन, वचन, काय की परिपूर्ण समीक्षणता पा लेने से योगी का गुण तो विद्यमान था ही, भोगी भी हैं प्रभु। भोग शब्द से कोई भगवान् विलासी नही हैं वे तो आत्म गुण के भोगी हैं। भोगान्तराय आदि कर्मों को क्षपित कर देने से भगवान् स्वात्मरमण रूप भोग मे तन्मय होने से भोगी भी हैं।

वक्ता और मौनी

द्वादशाग रूप प्रवचन के उपदेष्टा होने से प्रभु वक्ता हैं और सदा स्वात्म भाव मे रमण करने के कारण मौनी भी हैं।

अनुपयोगी और उपयोगी

प्रभु वीतरागी बन चुके हैं। उन्हे किसी भी तत्त्व का बोध पाने के लिये उपयोगी लगाने की आवश्यकता नही है। बिना उपयोग लगाये ही वस्तु तत्त्व को जानने से प्रभु अनुपयोगी है, साथ ही उनमे ज्ञान–दर्शन का उपयोग सतत प्रवहमान होने से वे उपयोगी हैं।

सुज्ञ आत्माओ! इस प्रकार जिनेश्वर भगवतो के विलक्षण गुणो का ज्ञान प्राप्त करते हुए मन, वचन, काया की एकाकारता के साथ उनकी स्तुति का प्रसग बनेगा, समीक्षणता का विकास होगा तो निश्चित ही एक दिन परमात्म भाव का वरण कर सकेगे।

समीक्षण श्रेय और प्रेय का (1)

- श्रेय मार्ग – आध्यात्मिकता प्रेय मार्ग – भौतिकता
- प्रेय मार्ग से आत्मा का भारीपन
- श्रेय मार्ग से आत्मा का हल्कापन
- एक ज्वलन्त प्रश्न
- समाधान की ओर
- कर्ता के तीन रूप
- प्रेय मार्ग की प्रेरिका

कहण भंते। जीवा गुरुयत्त हव्वमागच्छति।

जयती ! पाणाइवाएण जाव मिच्छं दसण सल्लेण।

एव खलु जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छति

भगवती सूत्र शतक 12/2

हे भगवान! जीव किस कारण से गुरुत्व भाव को प्राप्त करता है?

जयन्ती श्रमणोपासिका के इस प्रश्न का समाधान दिया प्रभु महावीर ने– जयन्ती! प्राणातिपात से लेकर मिथ्या दर्शन शल्य तक के अट्ठारह पाप कर्मों के गर्हित आचरण से गुरुत्व अर्थात् भारीपन को प्राप्त करते हैं।

कहण भते। जीवा लहुयत्त हव्व मागच्छति।

जयन्ती! पाणाइवाय वेरमणेण जावमिच्छादसण सल्ल

वेरमणेण एव खलु जयन्ती जीवा लहुयत्त हव्वमागच्छति।

हे भगवन्! जीव लघुत्व भाव कैसे प्राप्त करता है?

जयन्ती श्रमणोपासिका के इस प्रश्न का समाधान दिया प्रभु महावीर ने– जयन्ती! जीव प्राणातिपात के विरमण से यावत् मिथ्या दर्शन के विरमण से लघुत्व भाव को प्राप्त करता है।

OOO

श्रेय मार्ग– आत्मा को कर्मों से हल्की करता है।

प्रेय मार्ग– आत्मा को कर्मों से भारी बनाता है।

श्री श्रेयास जिन अन्तरयामी
आतमरामी नामी रे।
अध्यातम मत पूरण पामी
सहज मुक्ति गति गामी रे। श्री श्रेयास
निज स्वरूप जे किरिया साधे कहिए रे,
ते अध्यातम लहीये रे।
जे किरिया करी चउगति साधे
ते न अध्यात्म कहीये रे।। श्री श्रेयास

श्रेयास प्रभु के स्तुति गान का आज भव्य प्रसग उपस्थित हुआ है। यह प्रसग मानव जीवन के समक्ष दो मार्ग उपस्थित करता है– एक श्रेय का दूसरा प्रेय का।

श्रेय मार्ग पर चलने वाली आत्मा जन्म–मरण के दु ख से विलग होकर परम सुख और परम शाति को वरती है। सदा–सदा के लिए परमानन्द स्वरूप मे रमण करने लगती है। मनुष्य जीवन के उन्नयन का यदि कोई मार्ग है तो ज्ञानी जनो की दृष्टि मे श्रेय मार्ग ही है। आप सभी ने अतत–अनत पुण्य का अर्जन करके इस अमूल्य मानव तन को पाया है। जिस तन मे रह कर आत्मा, श्रेय मार्ग पर निराबाध रूप से चलती हुई चरम लक्ष्य का वरण कर सकती है, उस तन मे रहती हुई आत्मा श्रेय मार्ग को यदि नही अपनाती है तो और कोई ऐसी जिन्दगी नही, ऐसा कोई उपस्थान नही कि जिससे वह व्यष्टि से समष्टि की ओर जा सके। अर्थात् व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, विश्व आदि सारी परिधियो से ऊपर उठता हुआ सिद्ध स्वरूप मे रमण कर सके।

श्रेय मार्ग परमात्मा तक जाने का व्यवस्थित और शृखलावद्ध मार्ग है जिस पर चलने पर स्व ओर पर दोनो का कल्याण होता है। यह मार्ग अज्ञानाधकार से भरे ससार मे राग–द्वेष की झझावातो के द्वारा चतुर्गति रूपी समुद्र मे डूब रही आत्मा को परमानन्द के किनारे पहुँचाने वाला पतवार हे।

इस मार्ग की व्याख्या ज्ञानियो ने मात्र सैद्धान्तिक रूप से नही अपितु प्रयोगात्मक रूप से उपस्थित की है क्योकि इसी मार्ग पर चल कर ज्ञानियो ने सिद्धत्वावस्था प्राप्त की।

एतदर्थ यह मार्ग भव्य मानवो के उन्नति पथ पर बढने के लिए विशेषत समाचरणीय है। किन्तु जो मानव इस मार्ग से स्खलित होता हुआ प्रेय मार्ग की ओर बढता है, वह साधक आत्म-सुख से पीछे हटता हुआ सुखाभास के रूप मे लगने वाले सुख एव भयकर दु खो को पाता हुआ नवीन-नवीन कर्मो को उपार्जित करता रहता है। ऐसा मानव जीवन मे कई तरह की समस्याएँ पैदा करता रहता है, सामाजिक कुरीति-रिवाजो की सर्जना भी करता रहता है। आत्मानन्द से विपरीत होने वाली सारी की सारी क्रिया-प्रतिक्रियाए प्रेय मार्ग की कोटि मे आती हैं।

श्रेय मार्ग-आध्यात्मिकता, प्रेय मार्ग-भौतिकता

श्रेय मार्ग को ही कवि ने अध्यात्म रूप मे तथा प्रेय मार्ग को भौतिक रूप मे प्रस्तुत किया है। श्रेयास प्रभु ने अन्तर पथ पर चलकर आत्म-स्वरूप का अन्वेषण करते हुए राग-द्वेष को पूर्णतया विजित कर अध्यात्म पद को प्राप्त किया तथा सहज रूप से मुक्त गति (पचमी गति) को प्राप्त कर लिया। यह परम सुख की अनुभूति श्रेय मार्ग पर चलने पर ही हो पाती है।

कई साधक श्रेय मार्ग का नाम लेकर भी उस पथ पर नही चलते हुए प्रेय मार्ग पर प्रवृत्ति करने लगते हैं। ऐसे साधको की ओर इगित करते हुए कवि ने कहा है-

सयल संसारी इन्द्रिय रामी।

अर्थात्- जो साधक ऐन्द्रिक विषयो के लोलुपी है, भौतिक सुख-सुविधाओ मे आसक्त है, वे आतमरामी न होकर इन्द्रियरामी हैं, वे श्रेय मार्ग के राही न होकर प्रेय मार्ग के पथिक हैं। श्रेय मार्ग का पथिक कौन हो सकता है, इसके लिए कवि ने इगित किया है-

मुनि गण आतमरामी रे।

अर्थात्- जो साधक ससारी विषयो से सर्वथा विमुख हैं ऐन्द्रिक विषयो के प्रति निरासक्त हैं। दशविध श्रमण धर्म के अनुपालन मे तन्मय हैं। अदीन भाव से आत्म-साधना मे रत हैं वे ही साधक सच्चे अर्थो मे श्रेय मार्ग

के पथिक हैं। सुज्ञ बन्धुओ! आतमरामी की व्याख्या करते हुए कवि ने फिर कहा है–

मुख्यपणे जे आतमरामी ते केवल निष्कामी रे।

अर्थात्– मुख्य रूप से वे ही आतमरामी होते हैं जो ससार की सारी ही वैषयिक कामनाओ एव लालसाओ से दूर हो। साधुत्व अवस्था मे रहकर भी जो साधक वेषयिक लालसाओ मे लिप्त है, प्रबल काषायिक भावनाओ से भरे है, वे प्रेय मार्ग के राही है, किन्तु ससारी अवस्था के बीच रहने वाले मानव यदि ऐन्द्रिक विषयासक्ति से उपरत हैं, काषायिक प्रबल भावनाओ से परे हैं या फिर ऐन्द्रिक विषयो से उपरत होने की ओर गतिशील हैं, जीवन समीक्षण की ओर जिनकी गति है, वे श्रेय मार्ग के राही हैं।

प्रेय मार्ग से आत्मा का भारीपन

जयन्ती श्रमणोपासिका के गुरुत्व–लघुत्व सम्बन्धी प्रश्न के द्वारा भी श्रेय और प्रेय मार्ग का स्पष्टीकरण हो जाता है, भगवती सूत्र के बारहवे शतक के द्वितीय उद्देशक मे जयन्ती श्रमणोपासिका का वर्णन आता है। आत्म जागरण के लिए उसने भगवान् से अनेक प्रश्न पूछे थे, उनमे से एक प्रश्न यह भी था–

कहण भते। जीव गरुयत्तं हव्वमागच्छंति?

जयन्ती! पाणाइवाएण जाव मिच्छा दंसण संन्लेणं।

एवं खलु जीवा गरुयत्त, हव्वमागच्छति।

हे भगवान्! जीव किस कारण से गुरुत्व भाव को प्रकट करता है? जयन्ती श्रमणोपासिका के इस प्रश्न का भगवान् ने समाधान दिया– जयन्ती! जीव प्राणातिपात से लेकर मिथ्या दर्शन शल्य तक के अट्ठारह पाप कर्मो के गर्हित आचरण से गुरुत्व अर्थात् भारीपन को प्राप्त करते हे। ऐसे भारीपन को प्राप्त करता हुआ वह जीव चतुर्गति ससार मे परिभ्रमण करता रहता है।

प्रभु ने आत्मा के भारी होने के कारण अट्ठारह पाप वतलाए हैं। आप सभी को, सभव है, अट्ठारह पापो के नाम तो याद होगे ही? अगर याद न हो तो अटठारह पापो के नाम याद कर लेना चाहिए।

अटठारह पापो मे सवसे पहला पाप प्राणातिपात वतलाया हे। जीव–हिसा द्वारा भी आत्मा कर्मो का वन्धन करती है। उस कर्म वन्धन से

आत्मा भारी बनती है। यह भारीपन आत्मा को अध पतन की ओर ढकेल देता है। हिसा की व्याख्या करते हुए वाचक उमास्वाति ने कहा है–

प्रमत्त योगात् प्राणं व्यपरोपण हिसा।

प्रमत्त योग से किसी के प्राणो का व्यपरोपण कर देना हिसा है। इसी प्रकार मृषावाद–झूठ बोलने से, अदत्ता दान–चोरी करने से, मैथुन–विषय सेवन से, परिग्रह–ममत्व रखने से भी आत्मा कर्मों से भारी बनती है।

आज का धनलोलुपी व्यक्ति किस प्रकार से हिसा, झूठ, चोरी आदि पापो का सेवन करता हुआ धन एकत्रित कर रहा है। धनार्जन की यह वृत्ति मानव से क्या–क्या अनीति और कुकृत्य करा डालती है, मुझे इसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नही है। इस विषय मे तो आप लोगो की बुद्धि बहुत ही पैनी एव तीक्ष्ण बन रही है, जहॉ सरकारी असेम्बलियो (Assembly), विधान सभा मे कोई अनीति न होने पाए, इसके लिए नियम बनाए जाते हैं वहा आज का व्यापारी, अफसर या कोई भी धनलोलुपी व्यक्ति उन नियमो से कैसे बचा जाय और किस प्रकार धन एकत्रित किया जाय, इसके लिए अनेक गलिये निकाल लेता है। आज सरकार ने किस प्रकार से नियमो का प्राकार बना रखा है, वह आपसे छिपा हुआ नही है। फिर भी मानव दो नम्बर के रास्तो से धन की अतृप्त लालसा को पूरी करने मे जुटा हुआ है।

सुज्ञ आत्माओ ! यह सब प्रेय मार्ग है। ऐसे मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति अपनी आत्मा को कर्मों से भारी बनाते हैं और चतुर्गति ससार मे भटकते रहते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि पाप स्थानो की व्याख्या बहुत विस्तृत है। उन सबकी व्याख्या करने के लिए मुझे बहुत समय चाहिए। अत अभी तो आपको सक्षिप्त मे ही प्रेय एव श्रेय मार्ग का स्वरूप बतला रहा हूँ।

श्रेय मार्ग से आत्मा का हल्कापन

जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान् से जिस प्रकार आत्मा के भारीपन के विषय मे प्रश्न किया उसी प्रकार आत्मा हल्की कैसे होती है ? इस विषय मे भी प्रश्न किया है–

कहणं भते जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छति?

जयन्ती! पाणाइवाय वेरमणेणं जाव मिच्छादसण

सल्ल वेरमणेण एव खलु जीवा लहुयत्त हव्वमागच्छति।

हे भगवान्! जीव लघुत्व भाव कैसे प्राप्त करता है? जयन्ती श्रमणोपासिका के इस प्रश्न पर भगवान् ने समाधान दिया– जयन्ती! जीव प्राणातिपात के विरमण से यावत मिथ्या दर्शन के विरमण से लघुत्व भाव को प्राप्त करता है।

आत्मा का मौलिक स्वभाव हल्कापन है। जिस प्रकार मोटे रूप से रुई हल्की और लोह भारी लगता है। रुई ऊपर उठने लगती और लोह नीचे गिरने लगता है। इसी प्रकार आत्मा ज्यो–ज्यो कर्मो से हल्की होती जाती है, त्यो–त्यो ऊपर उठने लगती है, क्योकि उसका चरम लक्ष्य ऊपर की ओर है। किन्तु जब कर्मो से भारी होती जाती है त्यो–त्यो यह पतन की ओर बढने लगती है। आत्मा के ऊपर उठने का स्वभाव ही उसके हल्केपन का परिचायक है। किन्तु कर्मो का भारीपन उसे ससार मे रुलाता है। आत्मा को ऊपर की ओर ले जाने के लिए श्रेय मार्ग पर चलना होगा। आत्मा का समीक्षण करना होगा। श्रेय मार्ग द्वारा ही आत्मा हल्केपन को प्राप्त करती है। श्रेय मार्ग को ही अट्ठारह पापो की निवृत्ति के रूप मे प्रतिपादित किया है।

जो व्यक्ति "आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्" अपनी आत्मा के प्रतिकूल लगने वाला आचरण दूसरो के लिए नही करता है, सभी आत्माओ के प्रति आत्मीय भाव रखता है, व्यवसायी कार्यों मे भी कम से कम हिसा, झूठ, चोरी आदि हो, इस विषय मे सतर्कता रखता है। क्रोधादिक कषायो को दूर हटाने के लिए प्रयत्न करता है, ऐसा व्यक्ति श्रेय मार्ग पर चलता हुआ अपनी आत्मा को हल्की बनाता है, वह हल्कापन बढते–बढते जिस दिन परिपूर्ण हल्केपन की स्थिति मे परिणत हो जाता है अर्थात् जब आत्मा सम्पूर्ण कर्मो से विलग हो जाती हे, तब वह परम सुख के स्थान को पा लेता है।

एक ज्वलन्त प्रश्न

प्रेय मार्ग पर चलने वाला केवल पुरुष वर्ग ही नही होता, हिसा, झूठ, चोरी आदि का आचरण मात्र पुरुष ही नही करता, किन्तु स्त्रिया भी करती हैं। जब तक व्यक्ति शादी नही करता, तब तक एक व्यष्टि इकाई का स्वामी होता हे, और जब वह शादी कर लेता हे तब दाम्पत्य जीवन इकाई का रूप ले लेता है। उसी इकाई मे सतानो का प्रसग भी समाविष्ट हो जाता है, यहा विचारणीय विषय यह है कि ऐसे सयुक्त परिवार रूप इकाई का स्वामी पुरुष

होता है जो दुकान पर बैठ कर जितने भी कर्म कर रहा है पाप कर रहा है, उन पाप कर्मो का भागीदार वह व्यापारी ही है, या उनके साथ बैठने वाले पुत्र भी है? साथ ही, क्या उसकी धर्मपत्नी और अन्य बाल–बच्चे भी हैं जो कि उस परिवार की सदस्यता को लेकर चल रहे है, वे सभी भागीदार होगे?

इधर घरेलू कार्य की दृष्टि से जो बहिने रसोई बनाने आदि कार्य करती हैं उसमे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस– इन छहो प्रकार के जीवो का हनन होता है। आज के आधुनिक साधनो के द्वारा कभी–कभी तो मनुष्य तक की हिसा हो जाती है, इस प्रकार के हिसात्मक कार्यो से होने वाले पाप कर्मों का भागीदार कौन होगा? क्या रसोई बनाने वाली महिला ही होगी या पुरुष वर्ग तथा परिवार से सम्बन्धित सभी व्यक्ति? इस प्रकार का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। कई अध्ययनशील व्यक्ति अन्य तर्क भी दे सकते हैं। वे दे या न दे किन्तु मैं स्वय भी आपके नॉलेज के लिए वे तर्क भी रख देता हूँ जहॉ शास्त्र मे कहा गया है–

अप्पाकत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।

अप्पामित्तम मित्त च, दुपट्टिअ सुप्पट्टिओ।।

सुख और दु ख का कारण पुण्य और पाप हैं, इन पुण्य और पाप का कर्ता स्वय आत्मा है। जो करता है, वही भरता है। जैसा करता है, वैसा भरता है।

अत करने वाला व्यक्ति ही पाप का भागीदार बनता है। जो पाप करता ही नही है वह उसका भागीदार कैसे बन सकता है?

गीता मे भी इसी प्रकार कहा है–

उद्धरेदात्मनात्मान आत्मानमवसादयेतु।

आत्मनेव आत्मनोबन्धुरात्मेव रिपुरात्मन ।।

हे अर्जुन! अपनी आत्मा का उद्धार तू स्वय कर, दूसरा तुम्हारी आत्मा का उद्धार नही कर सकता। तेरा पतन भी तू ही करेगा, तेरा उद्धार भी तू ही करेगा। इसका तात्पर्य है कि अगर पाप तुम करोगे तो उसका फल तुम्हे ही मिलेगा। दूसरे को उस पाप का फल कैसे मिल सकता है? इन उद्धरणो से यह जिज्ञासा ओर प्रबल हो जाती है कि पुरुष के द्वारा व्यापारिक कार्यो मे किये गए पाप का और महिला द्वारा भोजनादि पकाने के लिए किये

गये पाप का भागीदार कौन होगा? क्या व्यापारिक पाप का भागीदार पुरुष ही होगा या स्त्री और परिवार भी? क्या भोजनादि मे होने वाले पाप की भागीदार महिला ही होगी या पुरुष एव उसके परिवार के सदस्य भी?

समाधान की ओर

प्रेय मार्ग पर चलने वाले परिवार के किसी भी सदस्य द्वारा (जो परिवार से सम्बन्धित) हिसा की जाती है उसका कुछ न कुछ अश पारिवारिक सभी सदस्यो को मिलता है। पुरुष के द्वारा जो व्यापार मे हिसादिक पाप कर्म किये जाते हैं, उन पाप कर्मो का भाग उस परिवार की महिला एव बच्चे–बच्चियों को भी मिलता है, क्योकि पुरुष के द्वारा अनैतिक आचरण द्वारा किए गये धनार्जन पर मालिकी तथा उपयोग परिवार के सभी सदस्य करते है। इसी प्रकार महिला द्वारा भोजन आदि कार्यो मे की जाने वाली हिसा के पाप कर्म का भाग भी परिवार के सभी सदस्यो को लगता है, क्योकि उस भोजन का उपयोग परिवार के सभी सदस्य करते हैं।

शास्त्रकारो का जो यह कथन है कि आत्मा ही कर्ता और भोक्ता है, यह सच हे। किन्तु इसका अर्थ यह तो नही लिया जा सकता कि स्त्री भोजनादि मे जो पाप करती है उसका सारा पाप उसे ही लगेगा, पुरुष को नही। यदि ऐसा होगा तो फिर नौकर जो रसोई बनायेगा तो उस रसोई से होने वाली हिसा का पाप उस नौकर को ही लगेगा। यही नही, बडे–वडे व्यवसायो मे भी सभी कार्य प्राय मुनीमजी ही किया करते है। सेठ तो बैठा रहता है, तब उन व्यवसायो मे होने वाले हिसात्मक आदि अनैतिक कार्यो का भागीदार मुनीम ही होना चाहिए। और यदि ऐसा है तो उनसे होने वाले धनार्जन का स्वामी भी मुनीम ही होगा। किन्तु ऐसा होता नही हे। अत केवल किसी के द्वारा कुछ कर लेने मात्र से सारा का सारा पाप उस अकेले को नही लगता है। किन्तु जिसका कर्तृत्व, कारित्व, अनुमोदित्व भाव जितना है, उतने ही पाप का वह भागीदार होता है।

कर्ता के तीन रूप

कर्ता से क्या अर्थ लिया जाय? क्या जिस क्रिया का जो कर्ता है, वही यथार्थ मे उस क्रिया का कर्ता हे या करवाने वाला एव उस क्रिया का अनुमोदन करने वाला भी उसका कर्ता है?

जिस प्रकार इजन चलाने वाला व्यक्ति एक होता हे किन्तु उसे

चलाने मे गार्ड तथा कोयला डालने वाले आदि अनेक व्यक्ति सहायक होते हैं, उस गाडी मे बैठने वाले व्यक्ति भी उसे चलाने मे सहायक होते हैं। यदि गाडी नही चलती है तो यात्रियो के मन मे यह भावना आती है कि जल्दी से गाडी चले जिससे गन्तव्य तक शीघ्र पहुँच जाएँ। यह गाडी चलाने मे अनुमोदन है अत गाडी को चलाने वाला भी कर्ता है, गाडी को चलवाने वाले भी उसके कर्ता हैं और उसके अनुमोदक भी उसके कर्ता है।

इसी प्रकार भोजन अथवा व्यापार मे होने वाली हिसा को करने वाले उस पाप कर्म के कर्ता के रूप मे हैं, उस हिसा को कराने वाले भी, उसके करवाने वाले कर्ता के रूप मे हैं, और उस हिसा का अनुमोदन करने वाले, अनुमोदन कर्ता के रूप मे हैं। अत स्पष्ट है कि कर्ता के विविध रूप होते हैं। उन विविध रूपो के अनुसार पाप कर्मो के जीव सहभागी होते है।

यद्यपि रसोई बनाने वाली स्त्री है किन्तु पुरुष आर्डर देता है– रसोई शीघ्र बनाओ, मुझे दुकान जाना है। इस आर्डर से पुरुष रसोई का करवाने वाला कर्ता है। यदि रसोई जल्दी बन गई तो वह बहुत खुश होता है तब वही रसोई का अनुमोदक कर्ता बन जाता है। अत रसोई के पाप का सम्बन्ध पुरुष के साथ भी जुड जाता है।

इसी प्रकार व्यापार के विषय मे भी है। यद्यपि व्यापार पुरुष करता है, किन्तु बहिने यह चाहती है कि मेरे पतिदेव दुकान पर बैठे और खूब धनोपार्जन करे। मेरे लिए अच्छे जेवर, सुन्दर बगला और आधुनिक डिजाइनदार साडिया खरीद कर दे, इस भावना से वह व्यापार को कराने वाली कर्ता बनती है, यदि पुरुष कमाकर उसकी आवश्यकता पूर्ति कर देता है तो वह व्यापार की अनुमोदक कर्ता बनती है। इस प्रकार व्यापारिक हिसा मे पुरुष के साथ स्त्री भी सहभागी होती है।

अत स्पष्ट है कि पाप करने वाला कोई भी हो किन्तु उससे सम्बन्धित सभी व्यक्ति उस पाप के सहभागी होते हैं।

प्रेय मार्ग की प्रेरिका

कभी–कभी महिलाएँ पुरुषो को प्रेय मार्ग की ओर ढकेल देती हैं। उनकी हर माग पूरी होनी चाहिए। पुरुषो को कितना ही अन्याय, अत्याचार करना पडे पर उसको तो डिजाइनदार साडिया चाहिए, गहने चाहिए।

पुरुष को कम्पनी सरकार का आर्डर मानना ही पडता है। आज के

व्यक्ति सरकार के आदेशो को तो ठुकरा भी सकते है, उनके लिए कई गलिया भी निकाल लेते है किन्तु कम्पनी सरकार के आर्डर मे कोई गली नहीं निकल पाती। उसका तो पालन करना ही पडता है, इस प्रकार की महिलाए स्वय ही अध पतन के गर्त मे गिरती है और अपने पति को भी गर्त मे गिराती है।

ऐसी महिलाओ की रुचि धर्म कार्यो मे होते हुए भी उनके मस्तिष्क मे भौतिक तत्त्वो का आकर्षण अधिक होता है।

एक रूपक— एक बार स्व ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा एव स्व शात क्रान्ति के जन्मदाता युवाचार्यश्री गणेशीलालजी म सा साथ ही किसी गाव मे विराज रहे थे। भिक्षाचर्या के लिए स्वय युवाचार्यश्री गणेशीलालजी म सा पधारे। भ्रमण करते—करते वे एक श्रेष्ठी के घर मे पधारे। गोचरी करने के पश्चात् गुरुदेव ने श्राविका को व्याख्यान मे आने की प्रेरणा दी। गुरुदेव की बात सुन कर श्राविका बोली— गुरुदेव मेरी तो आने की बहुत इच्छा रहती है किन्तु आपके श्रावकजी आने नही देते।

गुरुदेव ने श्रावकजी की ओर देखा तो वे बोल उठे— गुरुदेव! इससे पूछिये तो सही मैंने इसे व्याख्यान श्रवणार्थ जाने के लिए कब इन्कारी की है? हमारे तो महान् पुण्य का उदय हुआ है कि क्रान्तिकारी आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा हमारे गाव मे पधारे है। उनकी पीयूष वर्षिणी वाणी प्रवाहित हो रही है। अत मेरा इनकार करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। इन दोनो की बातो को सुनकर गुरुदेव असमजस मे पड गये। सोचा— किस की बात सच है, दोनो ही सामने खडे हैं। गुरुदेव को विचार मे पडे देख सेठानी बोली— गुरुदेव, श्रावकजी का कहना उचित है। ये इस प्रकार तो मना नहीं करते। बात यह हे कि मेरे सोने की चूडी की टीप टूट गई है, मैंने इन्हे कहा— आप इसे जुडा कर दीजिए किन्तु यह जुडा कर लाते नही हैं, तो मैं सोने की चूडी पहने बिना व्याख्यान मे केसे आऊँ? सेठानी की बात सुनकर गुरुदेव सोचने लगे— अहो! कितनी नासमझ बहन हे, इसे धार्मिक जेसे श्रेय कार्यो मे भी प्रेय वस्तु की आसक्ति बाधक बन रही हे। व्याख्यान श्रवण और सोने की चूडी मे क्या सम्बन्ध? किन्तु इस बहन की दृष्टि मे व्याख्यान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सोने की चूडी है। गुरुदेव तो उसे अल्प शब्दो मे उद्बोधन देकर अपने स्थान पधार गए।

सज्जनो! क्या बाइयो को सोने की चूडी पहनना आवश्यक हे?

पोशाक सजाकर व्याख्यान स्थल पर जाना उचित है ? आज के युग मे फैशनेबिल चीजे, सोने की चूडियॉ, जजीरे पहिनकर न तो बाजार मे जाना ही उचित है और न ही व्याख्यान स्थल पर। कितना अच्छा हो कि ये बहिने श्रेय मार्ग को समझे और प्रेय मार्ग से मोड खाये। व्याख्यान स्थल पर आएँ तो सीधी–सादी पोशाक का विवेक रखे। जेवर पहिनने का मोह नहीं रखना चाहिए। इससे मुक्ति नही मिलेगी और अधिक कर्मो का बन्धन होगा।

जो बहिने व्याख्यान मे बढिया कपडे एव जेवर पहिनकर जाती है, वे जाकर बहनो के बीच मे बैठेगी और अपने गहनो, कपडो को निरखती रहेगी। समीपस्थ बहिनो का ध्यान भी उसी तरफ जायेगा। उन बहनो के मन मे भी ईर्ष्या भाव जाग्रत होगा, वे भी वैसे गहने पाने के लिए आर्तध्यान करने लगेगी। व्याख्यान श्रवण का लाभ नही उठा पायेगी। ऐसे अवसर पर बहिने श्रेय मार्ग पर न बढकर प्रेय मार्ग की ओर बढ जाती हैं। धर्मी बहने, इस फैशन को छोडे। आचार्य भगवन् फरमाते थे–

"फैशन से फासी और सादगी की आजादी" इस फैशन से कितनी ही आत्माएँ कर्मो से दबती जा रही है, प्रेय मार्ग की ओर बढ रही हैं।

आप लोगो के हाथ मे अच्छा अवसर आया है– प्रेय मार्ग से हट कर श्रेय मार्ग की ओर आने का। ऐसे अवसर को हाथ से न जाने दे।

क्रमश

समीक्षण श्रेय और प्रेय का (२)

- राह कौन सी– श्रेय या प्रेय की
- श्रेय मार्ग की प्रेरिका
- झूठा अभिमान वकील सा का
- विपरीत परिणाम पत्नी पर
- पत्नी से परिवर्तन पति मे
- प्रेय मार्ग ओर दहेज
- श्रेय मार्ग और धनोपार्जन
- छोटी बहू का श्रेय कार्य
- पॉच स्वर्ण मुद्राएँ

अब तक आपके समक्ष श्रेय–प्रेय मार्ग की स्वरूप व्याख्या के साथ प्रेय मार्ग का कुछ स्पष्टीकरण भी आ चुका है। प्रेय मार्ग मे प्रवृत्ति जहा मानव को अवनति की ओर ले जाती है तो श्रेय मार्ग की प्रवृत्ति मानव को उन्नति की ओर ले जाती है। श्रेय मार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले मानव की दृष्टि भौतिकता से हट कर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होती है। उनका लक्ष्य जड पदार्थ न होकर आत्मान्वेषण होता है। ऐसे साधको को कवि ने आत्मरामी कहा है। आत्मरामी साधक समीक्षण दृष्टि द्वारा श्रेय मार्ग प्रवृत्ति करता हुआ अन्तत परम सुख को प्राप्त कर लेता है।

राह कौन सी-श्रेय या प्रेय की

गृहस्थ जीवन को एकान्तत प्रेय मार्ग का राही नही कहा जा सकता। गृहस्थ जीवन मे रह कर भी कई व्यक्ति श्रेय मार्ग के राही बन जाते हैं। आचाराग सूत्र मे एक महत्त्वपूर्ण सूत्र आया है–

जे आसवा ते परिसव्वा, जे परिसव्वा ते आसवा।

जो आश्रव के स्थान हैं वे निर्जरा के स्थान बन जाते हैं और निर्जरा के स्थान भी आश्रव के स्थान बन जाते हैं। अत मुनि वेष मे रहते हुए जीवन को एकान्तत श्रेय मार्ग और गृहस्थ जीवन को एकान्तत प्रेय मार्ग नही कहा जा सकता। गृहस्थ जीवन मे रह कर के भी कई भव्यात्माए देशत समीक्षण ध्यान द्वारा आत्मोत्थान मे प्रवृत्ति करती हुई श्रेय मार्ग की राही बन जाती हैं।

किन्तु गृहस्थ जीवन की गाडी भी पति और पत्नी के द्वारा चलती है।

अत दोनो के विचारो मे समीकरण होना आवश्यक है। यदि दोनो के विचार भौतिकतापरक होगे, तो वे प्रेय मार्ग की ओर मुड जायेगे और यदि आध्यात्मिकता परक होगे तो वे श्रेय मार्ग के राही बन जायेगे। अभी मैंने आपको गणेशाचार्य के जीवन का सस्मरण सुनाया था। वह सेठानी श्रेय मार्ग मे जाने की इच्छा रखते हुए भी भौतिक तत्त्वो का आकर्षण उसके लिए बाधक बन रहा था। यदि कोई बहिन श्रेय मार्ग की अनुगामिनी है तो वह अपने प्रेय मार्गगामी पति को श्रेय मार्ग का राही बना देगी। जहा बहिने पति को प्रेय मार्ग का राही बना सकती हैं, वहॉ बहिने पति को श्रेय मार्ग का राही भी बना सकती हैं। ऐसी ही घटना मैं आपको सुनाता हूँ– जिसके द्वारा आपको ज्ञात हो सकेगा कि श्रेय–मार्गानुगामिनी धर्मपत्नी अपने प्रेय मार्गानुगामी पति को श्रेयानुगामी कैसे बनाती है।

श्रेय मार्ग की प्रेरिका

एक बहुत बडे वकील थे, जिनकी प्रतिभा बहुत तीक्ष्ण थी। मुकदमो मे किस प्रकार दाव–पेच करके अपने पक्ष को जिताना– वे अच्छी तरह जानते थे। गलत केस भी यदि उनके हाथो आ जाता तो वे उसे भी अपने बुद्धि बल के द्वारा न्यायालय मे सही प्रमाणित कर देते। एक बार की घटना है कि उनके पास एक ऐसा केस आया कि एक भाई को सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने थे और वह देने की स्थिति मे नही था, सामने वाले ने उस पर केस (दावा) कर दिया, उस व्यक्ति ने भी अपने पक्ष को रखने के लिए इन वकील सा को अपना वकील बना लिया। वकील सा यह अच्छी तरह जानते थे कि जिसका केस मैने लिया है उसे सामने वाले व्यक्ति को पचास हजार रुपये देने है, किन्तु केस जब वकील सा ने अपने हाथ मे ले लिया तो ऐसे झूठे केस को भी जिताने के लिए अपनी बुद्धि की दौड लगाने लगे। आखिर उन्होने अपने पक्ष को जिता ही दिया। जिताया ही नही अपितु उसको उसे पचास हजार रुपये देने थे उसे देने की बात दूर रही, उससे पचास हजार रुपये लेने निकलवा दिये। देखिये, आज के कोर्ट का न्याय। जहॉ दूध का दूध और पानी का पानी होना चाहिए, वहॉ ऐसे वकीलो के परिणामस्वरूप आज कैसे अन्धकारमय निर्णय सामने आते हैं, जहॉ दु ख का मारा व्यक्ति अपना न्याय लेने के लिए न्यायालय मे आए और उसकी ऐसी स्थिति बने तो उसके दिल पर क्या बीतती हे? आज तो कई सुज्ञ व्यक्ति अपनी हानि सहन कर लेते हैं, किन्तु कोर्ट मे लडने नही जाते। वकील साहब तो केस जीत लेने के कारण वहुत प्रसन्न हो रहे थे, मन ही मन फूले नही समा रहे थे। जीत की खुशी से उन्मत्त होते हुए वे घर पर पहुँचे। भोजन करने के लिए बेठे ही थे और उनकी धर्मपत्नी भोजन परोस रही थी कि इतने मे ही जिस पक्ष को उन्होने जिताया था, उस पक्ष का व्यक्ति बहुत खुश होता हुआ वहाँ आ पहुँचा और दस हजार रुपयो के नोट वकील साहब को लेने के लिए आग्रह करने लगा।

झूठा अभिमान वकील साहब का

वकील साहव समझ गये, मैंने इसके पक्ष को जिताया उसी के फलस्वरूप यह दस हजार रुपये देने का आग्रह कर रहा हे, लेकिन मेरे इस बुद्धि के चमत्कार को मेरी पत्नी केसे जानेगी, में अपने मुँह से कहूँ इसकी

अपेक्षा इसके मुँह से कहलाऊँ तो ज्यादा अच्छा होगा। यह सोच कर वकील साहब तिरछी नजर से उसे देखते हुए बोले "यह रुपये किस बात के हैं?" इस पर वह व्यक्ति हाथ जोड कर विनम्रता के साथ बोला– वकील सा यह रुपये आपके बुद्धि बल के चमत्कार के परिणाम हैं। आपने कोर्ट मे वह चमत्कार दिखाया कि जिससे मेरा असत्य पक्ष भी, सही साबित हो गया। मुझे जो सामने वाले व्यक्ति के पचास हजार रुपये देने थे, उसके बदले आपने पचास हजार रुपये और दिलवाये, इस प्रकार मुझे एक लाख रुपये की आमदनी करवा दी। इतने रुपये तो मैं नही दे सकता किन्तु आपकी फीस के दस हजार रुपये दे रहा हूँ।

विपरीत परिणाम पत्नी पर

वकील सा सोच रहे थे कि इस व्यक्ति की बात सुनकर मेरी पत्नी बहुत खुश होगी और कहेगी कि बहुत अच्छा किया आपने, मैं आपकी बुद्धि की दाद देती हूँ, अब मेरे बहुत जेवर और पोशाक बन जाएँगे। अपने ही विचारो मे खोए वकील सा ने ज्यो ही अपनी धर्मपत्नी की ओर देखा तो उनके विचारो पर कुठाराघात हो गया। उनकी सारी भावनाओ पर पानी फिर गया। पत्नी के खुश होने की बात तो दूर रही। उसकी ऑखो मे धर–धर ऑसू आ रहे थे।

वकील साहब की तो सारी प्रसन्नता ही कही गायब हो गई। वे सहमते हुए पत्नी से बोले– अरे, तुम रो क्यो रही हो? लो ये दस हजार रुपये मैं तुम्हे दे देता हूँ। इनसे तुम जो चाहो सो बनवा लेना। इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हारी इच्छा होगी सो भी पूरी कर दूगा, लेकिन तुम रोती क्यो हो?

पत्नी से परिवर्तन पति में

पत्नी का रोना इसलिए तो था नही कि उसे रुपये चाहिए, उसकी आत्मा तो इसलिए कराह रही थी कि अहो ! कितना घोर अन्याय हो रहा है। जिस कोर्ट से न्याय की अपेक्षा रखी जाती है उसी कोर्ट मे यह घोरतम अन्याय और वह भी मेरे पति द्वारा, तुच्छ रुपयो के लिये। वह बोल उठी पति से– मुझे नही चाहिए ऐसा रुपया और न ही मुझे ऐसी कोई भी फैशनेबल साडी या जेवर ही चाहिए। मैं एक पोशाक से भी अपनी गुजर कर सकती हूँ किन्तु मुझे अनीति का एक पैसा भी नही चाहिए। ईमानदारी का तकाजा था कि आप इस व्यक्ति से पचास हजार रुपये सामने वाले को दिलवाकर

सही इन्साफ करवाते। लेकिन आपने पचास हजार रुपये उसे दिलवाने की बात तो दूर रही बल्कि उससे पचास हजार रुपये और निकलवा लिये। क्या आपने सोचा कि जिसके एक लाख का घाटा हुआ उसका कितना कलेजा टूटा होगा? कलम और बुद्धि से होने वाली कितनी क्रूर हिसा है यहा। ऐसे कृत्यो से भारी कर्मो का बन्धन होता है।

मैं आपकी धर्मपत्नी और आप मेरे पति, अत मेरे पति ऐसे हिसाकारी कार्यों से उपरत होकर ऊपर उठे। न्याय और नीति से वित्तोपार्जन करें जिससे यह जीवन भी सुखी बने और पर जीवन भी सुखमय बन सके। अत मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आप इस प्रकार के अनीतिपूर्ण कार्यो को छोडे। ऐसे धन की अपेक्षा सीधा और सात्त्विक जीवन जीना बहुत उत्तम है।

पत्नी की मानवीय भावना और आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव वकील सा पर भी गहरा पडा। वे भी सोचने लगे– जब पत्नी भी अनीतिपूर्ण धन को नही चाहती है तो फिर इसे रख कर क्या करना है?

वकील सा ने उस भाई से कहा– यह रुपये तुम वापिस ले जाओ। मेरी पत्नी इस प्रकार के अनीतिपूर्ण धन को रखना बिल्कुल पसन्द नही करती। तुम्हे भी जो पचास हजार रुपये और आए हैं, उन्हे तो वापस सामने वाले व्यक्ति को देने पडेगे।

देखिये बहिन की धार्मिक भावना। समीक्षण दृष्टि के अभ्यास ने क्या चमत्कार बताया, प्रेय मार्ग की ओर बढने वाले अपने पति को भी श्रेय मार्ग की ओर लगा दिया। ऐसी शक्ति भी बहिनो मे होती है, वह अनीतियुक्त कार्यो मे लगे अपने पति को धर्म की ओर लगा सकती हे, ऐसी ही बहिने श्रेय मार्ग की प्रेरिका बन जाती हैं।

प्रेय मार्ग और दहेज

वर्तमान युग मे कितनी कुप्रथाए, कुरीतियाँ चल रही हैं। दहेज–प्रथा के भूत ने सारे समाज मे आतक फेला रखा हे। दहेज की वेदी पर कई कुवारी बहिनो ने अपना बलिदान दे दिया है, तो कई नव–विवाहित बहिनो को अपना होम करना पडा हे। शिष्ट कहलाने वाला समाज भी दहेज प्रथा से अछूता नही है। बाहरी प्लेटफार्म पर दहेज का विरोध करने वाले बहुत मिलते हैं, सामाजिक मीटिगो मे लम्बे–चौडे भाषण देने वाले भी बहुतेरे हैं। किन्तु जब विरोध करने वाले भी कई व्यक्तियो के समक्ष स्वय के लडके के सम्बन्ध का

प्रसग आएगा तो दहेज लेने से नही चूकेगे। ऊपरी तौर पर तो यह प्रदर्शन करते रहते हैं कि हम दहेज नही मागते, देने वाला अपनी बेटी को देता है, लाख दे चाहे करोड, हमे उससे कोई मतलब नही है। हमे तो लडकी गुणवान चाहिए। ऐसे बोलने वाले व्यक्ति भी प्रकारान्तर से मागने मे नही चूकते हैं। मेरे कानो मे ऐसे भी शब्द पडते है कि कई लडको के पिता ऐसा कहते है– "साहब पहले अमुक शहर के व्यक्ति आए थे, वे इतना देने को कह गए थे"। इसका तात्पर्य इससे कम तो आप क्या देगे? इसी प्रकार के अन्य तरीको के द्वारा भी दहेज की माग की जाती है। यह कुप्रथा समाज के लिए एक भयकर अभिशाप बनी हुई है।

जिन–धर्म के उपासक कहलाने वाले जैनी, जो कि छोटे से छोटे जन्तु को भी मारने मे हिचकते है, ऐसे अहिसक व्यक्ति यदि दहेज–प्रथा के रोग से ग्रस्त है तो वे सच्ची तरह से अहिसा की उपासना नही कर सकते।

आप सभी श्रेय मार्ग के राही बनना चाहते हो तो प्रेय मार्ग को सबल बनाने वाली इस कुप्रथा को त्याग देना चाहिए। बिना सत्पुरुषार्थ के उपार्जित किया गया धन जल्दी से पच नहीं सकता, व्यक्ति को कभी भी परमुखापेक्षी नही होना चाहिए।

श्रेय मार्ग और धनोपार्जन

न्याय और नीति से उपार्जित किया गया थोडा–सा धन भी बहुत लाभदायक होता है। अनीति से उपार्जित करोडो का धन भी शान्ति देने वाला नही बनता। आज के युग मे प्राय लोगो का यह दृष्टिकोण बना हुआ है कि किसी भी रीति से धन का उपार्जन करना चाहिए। और परिणामस्वरूप आपको देखने को मिलेगा कि करोडो की सम्पत्ति वाले भी तनावग्रस्त है, उन्हे भी शान्ति नही है। इसमे मूल कारण यह भी है कि उपार्जित धन नीति का नहीं है।

श्रेय मार्ग का राही बनने वाले साधक को नीति से उपार्जित धन का उपयोग करना चाहिए। नीति से उपार्जित धन से कैसा श्रेय होता है। इसके लिए मैं आपको एक घटना सुना देता हूँ।

एक गाव मे अगदत्त नाम का एक श्रेष्ठी रहता था, उसके पास करोडो की सम्पत्ति थी, उसके चार पुत्र थे। उन चारो पुत्रो का विवाह

भी योग्य कन्याओ के साथ कर दिया था। सभी प्रकार से सम्पन्न था वह किन्तु यह सम्पन्नता अधिक दिनो तक नही टिक पाई। कुछ ऐसा उतार आया कि उसकी सम्पन्नता विपन्नता मे परिणत होने लगी। विपन्नता भी इस तरीके की आई कि जीवन निर्वाह करना भी मुश्किल होने लगा। सेठाई मे फैशन के जो तौर–तरीके अपनाए थे, अब उनका निर्वाह करना मुश्किल हो गया।

ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी सेठ अपनी फैशनपरस्ती को नही छोडना चाहते थे। उसका निर्वाह करने के लिए वे छल–कपट, अनीति के द्वारा धन का उपार्जन करने लगे।

छोटी बहू का श्रेय कार्य

श्रेष्ठी के व्यापार करने के तौर–तरीके जब उसकी छोटी पुत्रवधू मदन मजरी को ज्ञात हुये तो उसे यह बिल्कुल अच्छा नही लगा। जब उसके पति घर पर आये तो उसने उन्ही से प्रश्न कर लिया– पतिदेव! आजकल व्यापार का रग–ढग किस प्रकार चल रहा है? पति ने कहा– प्रिये! क्या कहू, आजकल वडी विकट स्थिति है, पिताजी की पोजीशन घट गयी है, धन–सम्पत्ति के मद मे जो फिजूल के रीति–रिवाज चालू किए थे, आज वे दु खदायी बन गये हैं। हमने कुआ खोदा और हम ही गिर रहे है। ऐसी स्थिति मे अपनी इज्जत को बनाए रखने के प्रयास मे सभी प्रकार का व्यापार करके, किसी भी प्रकार से धन कमाने मे लगे हुए हैं।

इस बात को सुनकर मदन मजरी बोली– पतिदेव! यह क्या हो रहा है ? इस झूठी इज्जत के पीछे इस प्रकार अनीति पर चलेगे तो इहलोक और परलोक दोनो बिगड जायेगे। मुझे नहीं चाहिए, धन–दौलत। मैं एक सफेद साडी मे तथा टूटी–फूटी झोपडी मे दिन काट सकती हू। लेकिन इस प्रकार का अनीतिपूर्ण व्यापार नहीं होना चाहिए।

पति वोले– प्रिय! इसे मैं कैसे रोक सकता हूँ, यह सव काम पिताजी के हैं। वे ही इसे रोक भी सकते हे। आप उन्हे मना कर दीजिए कि वे इस प्रकार से व्यापार नही करे– मदन मजरी ने पति से कहा। तव वे वोले, नही, मैं तो पिताजी को नही कह सकता, में उन्हे कहूँ ओर वे मुझे डाट दे तव क्या करू?

पतिदेव का साहस नही देखा तो मदन मजरी स्वय ही श्वसुरजी को

कहने के लिए तत्पर हो गई। देखिए बहिन का साहस। क्या भावना थी उसमे धर्म और नीति की। कहा आज का युग। किसे परवाह, पति कैसे व्यापार कर रहे है, नीति से कमा रहे हैं या अनीति से। किसी भी प्रकार कमाए, बस हमारी तो आवश्यकता पूर्ति होनी चाहिए।

मदन मजरी ने साहस किया और वह श्वसुरजी के पास पहुच कर बहुत विनम्र शब्दो मे निवेदन करने लगी– पिताश्री (श्वसुरजी) आजकल का व्यापार किस रीति–नीति से चल रहा है? पुत्रवधू के मुँह से यह प्रश्न सुनकर श्रेष्ठी अगदत्त कुछ चौंके– सोचने लगे, इसे क्या मालूम कि अभी व्यापार किस प्रकार चल रहा है।

सेठजी कुछ गम्भीर होकर बोले– पुत्रवधू, क्या बताऊँ? इस समय धनोपार्जन की विकट समस्या आ खडी हुई है, रीति–नीति से व्यापार करने पर धनोपार्जन नही होता। बिना धन के घर–गृहस्थी अच्छी तरह से चल नही सकती, इसीलिए छल–कपट के साथ व्यापार करना पडता है।

बहुत ही विनम्रता के साथ मदन मजरी बोली– पिताश्री! अनीति एव छल–कपट द्वारा उपार्जित धन से इज्जत नही बचाई जा सकती, ऐसा धन कभी शाति देने वाला नहीं। मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि आपश्री इन धन्धो को छोडकर न्याय–नीति से व्यापार करे। न्यायोपार्जित सूखी रोटी भी शाति देने वाली बनेगी।

पुत्रवधू के विनम्र शब्दो का सेठ अगदत्त पर प्रभाव पडा। उसके कथनानुसार सेठ ने घर की सीधी–सादी स्थिति बना दी, खान–पान, रहन–सहन सब सीधा–सादा कर दिया, व्यापार भी नीति और विवेक के साथ करने लगे। नीति से उपार्जित धन से घर का खर्च चलने के बाद सिर्फ पाच स्वर्ण मुद्राए बची।

मदन मजरी ने कहा– आप फिक्र न कीजिए। बस, पूर्ण नीति के साथ व्यापार करते रहिए। एक न एक दिन पुण्य कर्म का उदय होगा। सारी स्थिति पूर्ववत् हो जायेगी।

पाँच स्वर्ण मुद्राएँ

जिस नगर मे श्रेष्ठी निवास करता था। उस नगर के राजकुमार को भयकर दाहज्वर हो गया। बहुत उपचार करने पर भी उसका रोग सीमित नही हुआ। उसी समय एक योगी किसी अन्य नगर से वहा आ पहुँचा। उसके

कानो मे जब राजकुमार के दाहज्वर की बात पडी तो वह अनुकम्पा भावना से, राजकुमार को बचाने के लिए राजभवन जा पहुँचा। योगी ने सम्राट् से कहा– राजन्! तुम्हारे पुत्र को स्वस्थ तो मै कर सकता हूँ किन्तु इसकी स्वस्थता के लिए बिलकुल न्याय से उपार्जित पॉच स्वर्ण–मुद्राएँ चाहिए। मैं मत्र पढकर उन मुद्राओ पर पानी डालूँगा। उस पानी को राजकुमार को पिलाने पर राजकुमार स्वस्थ हो जायेगा।

सम्राट् विचार मे पड गये कि न्याय से उपार्जित धन कहॉ मिले। आखिर उन्होने नगर मे पटह बजवा दिया। मदन मजरी ने भी पटह सुना। उसने सेठ अगदत्त से कहा– "पिताश्री! मौका आ गया है, इस परमार्थ के काम को हाथ से न जाने दीजिए। आप ये पॉचो स्वर्ण मुद्राए ले जाइये और सम्राट् को कह दीजिये कि ये पाच स्वर्ण मुद्राए न्याय से उपार्जित है।" सेठ अगदत्त ने वैसा ही किया। सम्राट् ने वे पॉचो स्वर्ण मुद्राए योगी के समक्ष रख दी। योगी ने मत्र जाप करना प्रारम्भ कर दिया। मत्र जाप करके ज्यो ही स्वर्ण मुद्राओ पर पानी डाला, त्यो ही वे चमक उठी। योगी ने वह पानी राजकुमार को पिलाया– पीते ही राजकुमार का दाहज्वर समाप्त हो गया। सारे नगर मे प्रसन्नता छा गई। सम्राट् ने रत्नो से भरी मजूषा योगी को भेट करनी चाही किन्तु योगी ने कहा– सन्यासी अकिचन होते है। मै तो यह रत्न–मजूषा नही रखता। यदि आपको देना ही हे तो इन सेठजी को दीजिए। इनकी स्वर्ण मुद्राओ के कारण ही राजकुमार स्वस्थ हुए है। सम्राट् ने खुश होकर वह रत्नो की भरी मजूषा अगदत्त के हाथो मे सौप दी और बहुत ठाट–बाट के साथ समारोहपूर्वक उसे घर पहुँचाया। सारे नगर मे उसकी ख्याति फैल गई। अब तो व्यापार भी वेग के साथ चलने लगा। सेठ अगदत्त के पास करोडो की सम्पत्ति हो गई। अव उसका जीवन शाति के साथ चलने लगा। न्याय–नीति से उपार्जित धन से सारे परिवार मे शाति छा गई। सारा का सारा परिवार श्रेय मार्ग का राही वन गया।

रूपक वहुत लम्बा है। सक्षेप मे मेरा तो इतना ही कहना है कि श्रेयास नाथ भगवान की प्रार्थना के माध्यम से आप श्रेय मार्ग के राही वने। वहिनो मे मदन मजरी के समान धार्मिक भावना एव साहस का सचार होना चाहिए। वहिनो मे यदि मदन मजरी के समान धार्मिक भावना एव साहस आ जाय तो शीघ्र ही शाति का शुभ सचार हो सकता हे।

परम शाति को पाने के जिज्ञासु आत्माओ को श्रेय मार्ग का राही बनना चाहिए। गृहस्थ जीवन मे रहते हुए भी सारी गतिविधि इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे कम से कम हिसा हो। मनसा, वचा, कर्मणा को यथाशक्य श्रेय मार्ग मे नियोजित करना चाहिए। जीवन की हर गतिविधि मे समीक्षण का सचार होना चाहिये। जो भी भव्य आत्मा श्रेय मार्ग की राही बनेगी, वह निश्चय ही एक दिन परम शाति को पा लेगी।

इन्द्रिय-समीक्षण

- सिद्ध और ससारी
- श्रोत इन्द्रियरामी का परिणाम
- रूपासक्ति का परिणाम
- सुगध–दुर्गंध मे आसक्ति भाव
- कटु परिणाम रसना का
- दुर्गतिकारिका स्पर्शना
- सुखाभास मे सुख प्रतीति
- सुख पुद्गलो मे नहीं, स्वय मे
- शक्ति को अन्त मे नियोजित करो

इन्दियाइ वसेकाउं अप्पाण उवसहरे।

–उत्तराध्ययन सूत्र–22/47

पाच इन्द्रियो को वश मे करके अपनी आत्मा का उपसहरण करना चाहिये।

इन्द्रियरामी जीव ऐन्द्रिक पदार्थों मे ही सुख मानकर चलते हैं। ऐसे इन्द्रियरामी जीव कभी भी शाश्वत शाति प्राप्त नहीं कर सकते। शाश्वत शाति की प्राप्ति के लिये तो इन्द्रियो को वश मे करने के साथ ही आत्मा को भी वश मे करना होगा। एकेन्द्रिय मे आसक्त होने पर भी प्राणी अपने जीवन का प्राणान्त कर देता है तो पॉचो इन्द्रियो मे आसक्त होने पर जीवन की क्या स्थिति बनती है?

जन्म–जन्मान्तर तक वह विषयासक्त आत्मा ससार मे भटकती रहती है। अत इन्द्रियो को उत्पथगामी विषयासक्ति से हटाकर सुपथगामी आत्म जागरण की ओर नियोजित करना चाहिए।

श्री श्रेयास जिन अन्तरयामी, आतमरागी नामी रे।
अध्यातममत पूरम पामी, सहज मुक्ति गति गामी रे।।
सयल ससारी इन्द्रियरामी, मुनि गण, आतमरामी रे।
मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निष्कामी रे।। श्री।।

श्रेयास प्रभु की प्रार्थना से श्रेय पथ की ओर गतिशील बनने की प्रेरणा मिलती है। यद्यपि इन कडियो की सक्षिप्त विवेचना गत दिनो मे हो चुकी है तथापि इन्हे कुछ विस्तार से समझना आवश्यक है।

सिद्ध और संसारी

जीवो के मुख्यतया दो भेद है– सिद्ध और ससारी। जिन आत्माओ ने कर्मो का सर्वथा प्रणाश कर दिया है, ससार के समस्त बधनो से जो परिपूर्णत विलग हो चुकी है। ऐसी आत्माएँ, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परमात्म स्वरूप का वरण कर लेती है। वे आत्माएँ अध्यात्म का चरम छोर पा लेती है। उनके लिए अब कुछ भी करणीय अवशेष नही रहता है। वे आत्माएँ कृतकृत्य हो जाती है। किन्तु जो जीव ससारी हैं और जो भौतिक तत्त्वो मे ही सुख मानकर चलते हैं, ऐन्द्रिक क्षणिक सुखो मे ही जिन्हे आनन्द आता है। नैतिक या अनैतिक किसी भी प्रकार से ऐन्द्रिक सुख प्राप्त कर उसे भोगने मे जो दिन–रात रहते हैं, वे जीव चार गति–चौरासी लाख योनियो मे परिभ्रमण करते है।

इन्द्रियरामी जीव ऐन्द्रिक पदार्थो मे ही सुख मानकर चलते हैं। लेकिन शास्त्रकारो ने कहा है कि एक ऐन्द्रिकता पर आसक्त जीव भी अपने अमूल्य जीवन को खो बैठता है, तो जो जीव पाचो ऐन्द्रिक विषयो मे आसक्त है, उसकी दशा का तो फिर कहना ही क्या ? इसलिए शास्त्रकारो ने कहा है–

इन्दियाइ वसेकाउ, अप्पाणं उवसहरे।

पॉच इन्द्रियो को वश मे करके अपनी आत्मा का उपसहरण समीक्षण करना चाहिये। जो आत्मा इन्द्रियासक्त होकर पतन की ओर बढ रही है, उसे उत्थानोन्मुख वनाना चाहिये। इन्द्रिया पॉच प्रकार की बतलाई गई हैं–

श्रोत्रेन्द्रिय को कान, चक्षु इन्द्रिय को ऑख, घ्राणेन्द्रिय को नाक, रसनेन्द्रिय को जिह्वा तथा स्पर्शनेन्द्रिय को त्वचा कहा जाता है।

श्रोत्र इन्द्रियरामी का परिणाम

श्रोत्र इन्द्रिय कान मे अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के शब्द आते है। प्रशसात्मक शब्द मन को प्रफुल्लित करने वाले होते हैं। निदात्मक शब्द मन को अप्रसन्न करने वाले होते हैं, इन प्रशसा और निन्दा भरे शब्दो पर होने वाला राग और द्वेष का भाव कर्म बधन कराने वाला बन जाता है। कान के विषय मे आसक्त मृग अपने जीवन को खो बैठता है। विषधर सर्प जिसके डक मात्र से प्राणियो का वध हो जाता है, ऐसा सर्प भी कर्णेन्द्रिय के वशीभूत होकर अपनी शक्ति खो देता है। जब सपेरा पुगी बजाने लगता है, उस पुगी की मधुर झकार को सुनकर सर्प अपना भान भूल जाता है और झूम उठता है। बिल से निकल कर सपेरे के सामने कुडली मारकर पुगी के नाद मे तन्मय हो जाता है। उसकी आसक्ति इतनी अधिक बढ जाती है कि वह सपेरा उसे पकड कर, उसके मुँह से जहर की ग्रन्थि निकाल देता है, तब भी उसे भान नही रहता है। यही हाल मृग–हरिण का है। जो सहज रूप से किसी की पकड मे नही आ सकता। जगलो मे इधर से उधर लम्बी चौकडिया मारता रहता है, वह भी सगीत की मधुर ध्वनि सुनकर उसमे आसक्त हो जाता है, उस सगीत को श्रवण करने के लिये वह सगीत गायक के सामने चला जाता है और उसकी आसक्ति उसे बधन मे फसा देती है। आज के अधिकाश मानवो का भी यही हाल है। छोटे–छोटे बच्चे भी जहा फिल्मो के अश्लील गीतो की गुजार आ रही हो, वहा खडे हो जाते है। बडे–बडे व्यक्ति अपने आवश्यक कामो को छोड कर गीतो की गूज मे आसक्त बन जाते है।

क्या आपने सोचा कि यह आसक्ति क्या गुल खिलायेगी? कर्णेन्द्रिय पर आसक्ति जब सर्प और मृग को परतत्र बना देती है, उनके जीवन प्रणाश का कारण बन जाती है तो उसी कर्णेन्द्रिय के विषय मे आसक्त इन्द्रियरामी मानव की क्या दशा होगी?

बधुओ! यह सोचने का विषय है कि आज आपको चिन्तनशील मस्तिष्क मिला है। वीतराग वाणी श्रवण करने को मिल रही है। इसे श्रवण करके भी यदि ऐन्द्रिक सुख मे फसे रहोगे तो फिर आत्मरामी बनने का मौका कब मिलेगा?

रूपासक्ति का परिणाम

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय कान से सबधित है तो चक्षु इन्द्रिय का विषय

ऑख से सबधित है। ऑख के सामने भी अच्छे और बुरे– दोनो प्रकार के रूप आते हैं। इन्द्रियरामी जीव अच्छे पर राग और बुरे पर द्वेष कर बैठता है, जो कि उसके पतन का कारण बन जाता है।

रूप के लोभी पतगिये को आपने देखा होगा, रात्रि मे जब बल्ब का तेज प्रकाश होता है तो उसे देखकर वह अज्ञानी पतगा उस पर मोहित हो जाता है, और उसे पाने के लिये उस पर झपापात करने लगता है। ज्योही वह बल्ब पर गिरता है, त्योही उसके उष्ण प्रकाश से मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पडता है, कुछ क्षणो पश्चात् जब उसकी मूर्च्छा दूर होती है तो वह पुन उसी बल्ब के प्रकाश को पाने के लिए उस पर झपापात करता है। उस समय वह नहीं जान पाता कि इसी पर पूर्व मे झपापात किया था तथा इसकी उष्णता से मूर्च्छित होकर गिर पडा था। वह अज्ञानी बार–बार बल्ब पर झपापात करके अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

सुज्ञ माने जाने वाले मानव को उस पतगिये के इस हाल पर तरस आती होगी।

सज्जनो! वह तो नासमझी के कारण से अपने जीवन को खो बैठता है पर समझदार कहलाने वाले मानव का क्या हाल हो रहा है? कही वह भी तो ऐसी अज्ञानता नही कर रहा है? रूप मे आसक्त मानव भी अपना भान खो बैठता है। हित–अहित के विवेक से विकल हो उठता है। उसकी प्रतिभा कुठित हो जाती है। रूपासक्ति उसके इसी जीवन को ही नहीं जन्म–जन्मान्तर को बरबाद कर देती है। बौद्ध धर्म के सुत्तपिटक मे भी इसी विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है–

पर्तान्त पज्जोत मिवाधि पातका।

दिट्ठे सुत्ते इति–हेके निविट्ठा।

जिस प्रकार पतगे जलते प्रदीप के रूप से आकर्षित होकर, उस पर झपापात करते हुए अपना प्राणान्त कर देते हैं, उसी प्रकार दृष्ट एव श्रुत वस्तुओ के व्यामोह मे फसकर अज्ञ जन भी अपने जीवन का पतन कर लेते हैं। रूपासक्ति मानव को किस प्रकार पतन की ओर ढकेलती है– इसके लिए एक छोटी सी घटना हे–

रूप का लोभी एक श्रेष्ठी पतगियो की तरह ही रूप के मोहक जाल मे फसा हुआ था। उसकी दृष्टि सुन्दर से सुन्दर रूप को देखने के लिये

उत्कण्ठित रहती थी। अपनी पत्नी के रूप पर तो वह इतना अधिक आसक्त था कि उसका रूप सर्वाधिक सुन्दर मानता था। प्राय अधिकाश समय उसका मस्तिष्क सुन्दर–सुन्दर रूपो की ही कल्पना किया करता था– मेरी पत्नी का रूप कितना सुन्दर हे?

एक बार उसकी पत्नी के मुँह पर भयानक फोडा हो गया, जिससे उसका रूप भी विकृत बन गया। फिर भी श्रेष्ठी के मन मे यह आसक्ति जमी हुई थी– मेरी पत्नी बहुत सुन्दर है। रात–दिन इन्ही विचारो मे घुलते–घुलते आयुष्य बधन का समय आ गया। उस समय भी उसके यही विचार चल रहे थे– अहो! मेरी पत्नी कितनी रमणीय, प्रिय, सुन्दर है। इन्ही विचारो के मध्य मे श्रेष्ठी ने आयुष्य बधन पूरा किया और मरकर अपनी पत्नी के ही फोडे मे कीडे के रूप मे जन्म लिया।

बधुओ! सोचिये अपने–अपने दिलो मे रूप के भयकर परिणामो को। कहा तो उन्नत मानव जीवन के साथ श्रेष्ठी को भौतिक तत्त्वो की समुपलब्धि थी और कहा उसके जीवन का कितना पतन हो गया, मानव जीवन को छोडकर एक किलबिले कीडे के रूप मे जन्म लेना पडा। अब श्रेष्ठी न मालूम कितने भवो तक ससार मे भ्रमण करेगा, कुछ कहा नही जा सकता।

रूपासक्ति मानव को कहॉ से कहॉ तक पहुँचा देती है। प्राग्ऐतिहासिक घटनाएँ इस बात की साक्षी है, रावण और मणिरथ भी तो रूप मे ही आसक्त हुए थे। सती सीता के रूप पर आसक्त हो रावण ने अपनी सोने की लका जला डाली। सारी ऋद्धि और समृद्धि ही नही गई, अपितु अपने जीवन से भी वह हाथ धो बैठा। यही हाल मणिरथ का हुआ था। जिस छोटे भाई युगबाहु को वह इतना अधिक चाहता था कि अपने बाद राज्य का उत्तराधिकारी उसे ही घोषित किया था, किन्तु सती मदन रेखा के रूप को देखकर मणिरथ बेभान हो गया। उसके हृदय मे रूपासक्ति की ऐसी विस्फोटक आग सुलग गई थी, जिस आग को बुझाने के लिए रूपासक्त मणिरथ ने अपने प्रिय भाई को भी छल–बल के द्वारा खत्म कर डाला। इतने पर भी रूपासक्ति की आग शात न हो पाई। अन्तत उस आग ने स्वय मणिरथ को ही खत्म कर डाला। इतिहास ऐसी एक नही अनेक घटनाओ से भरा पडा है।

सुगंध-दुर्गंध में आसक्ति भाव

चक्षु इन्द्रिय के बाद तीसरी इन्द्रिय घ्राण है। यह इन्द्रिय गध से

सम्बन्धित है। पुद्गलो के परिवर्तन से कोई पदार्थ सुगध के रूप मे तो कोई पदार्थ दुर्गन्ध के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। सुगन्धित पदार्थो मे ऐन्द्रिक रमण ससार को बढाने वाला होता है, दुर्गन्धित पदार्थों पर घृणा भी आत्मा के पतन का कारण बनती है।

ससार के समस्त पौद्गलिक पदार्थ परिवर्तनशील है। पुद्गलो के परिवर्तन से सुगध दुर्गन्धमय और दुर्गन्ध सुगधमय हो जाती है। अज्ञ मानव इस पौद्गलिक परिवर्तन के तथ्य को न समझकर सुगधित पुद्गलो मे आसक्त बन जाता है, यह आसक्ति भाव भी उसके जीवन को खत्म करने वाला बन जाता है। घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर कस्तूरी मृग कस्तूरी की सुगध मे आसक्त होकर जगल मे इधर से उधर दौड लगाता हुआ अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

कटु परिणाम रसना का

जिह्वेन्द्रिय के वश मे होकर मानव खाद्य–अखाद्य के विवेक को न रखता हुआ, अभक्ष्य पदार्थो को भी खा बैठता है। जहाँ मानवो का आहार शाकाहार होना चाहिए वहाँ आज देश मे मासाहार का कितना तेजी से प्रचार–प्रसार हो रहा है। अण्डे जैसे मासाहारी तत्त्व को भी शाकाहार बतलाकर लोगो को खिलाने का प्रयास किया जा रहा है। अण्डे निश्चित रूप से मासाहार हैं (इसकी विवेचना समय पर करने का भाव है)। जिह्वेन्द्रिय के वश मे होकर ऐसे अभक्ष्य पदार्थ को खाने वाले अपने जीवन को पतन के अधकूप मे ढकेल देते हैं।

सही माने मे सोचा जाय तो मानव का आहार मास नहीं है। आपने कभी सुना या देखा होगा कि डाक्टर लोग जब किसी मरीज को खून की बोतल चढाने लगते हैं तब सबसे पहले उसके खून की जाच की जाती है। मरीज के शरीर मे रहा हुआ रक्त और उसे दिये जाने वाले रक्त का मिलान हो जाय, तब ही उसे रक्त चढाया जाता है। यदि रक्त का मिलान न होने पर रक्त दे दिया जाय तो वह घातक परिणाम उपस्थित कर देता है।

सज्जनो ! विचार करने की बात हे कि जब मानव के रक्त का भी मिलान आवश्यक है तो जो पशुओ का मास है, क्या वह बेमेल मास मानव के लिये घातक सिद्ध न होगा? मासाहार परलोक मे तो हानिकारक होता ही हे किन्तु इस जीवन के लिये भी घातक सिद्ध होता है। सिद्धान्त की दृष्टि

से मासाहार नरक का हेतु बतलाया गया है।

जिह्वेन्द्रिय के वश मे होकर व्यक्ति अपने जीवन को किस प्रकार खो बैठता है, इसके लिए एक शास्त्रीय रूपक है–

एक सम्राट् के शरीर मे भयकर रोग पैदा हो गया। अनुभवी चिकित्सको ने उनका इलाज प्रारम्भ किया। सही तरीके से इलाज होने पर सम्राट् का भयकर रोग भी समाप्त हो गया। सम्राट स्वस्थ हो गये। चिकित्सको ने सम्राट् को यह स्पष्ट हिदायत दी– आपको अगर स्वस्थ रहना है तो आप कभी भी आम्रफल का सेवन न करे। आम्रफल आपके लिये अपथ्य है। जिस दिन भी आपने आम्रफल खा लिया तो उत्पन्न हुए रोग का कोई इलाज नही होगा। सम्राट् ने चिकित्सको की बात ध्यान से सुनी और मन मे यह निर्णय किया कि मैं अब कभी भी आम नही खाऊँगा।

अपथ्य तत्त्व के न खाने से सम्राट् की स्वस्थता बढने लगी। सम्राट् का जीवन शाति से व्यतीत होने लगा। बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन सम्राट् अपने प्रधान को साथ लेकर जगल मे भ्रमण करने के लिये निकले। घूमते–घूमते जब वे थक गए, तो विश्रान्ति के लिये किसी वृक्ष की छाया मे बैठने लगे। सयोगवश वह वृक्ष आम का ही था। आम्रवृक्ष को देख कर मत्री ने कहा– राजन्। अपने को इस वृक्ष की छाया मे नहीं बैठना है, हम दूसरे वृक्ष की छाया मे चले।

सम्राट् ने कहा– वृक्ष की छाया मे बैठने मे क्या होता है। वैद्यो ने तो आम खाने से मना किया है, छाया मे बैठने को तो नहीं। राजा उसी वृक्ष के नीच बैठ गया, मत्री भी राजा के साथ वही बैठ गया। कुछ समय के बाद राजा की दृष्टि वृक्ष पर लटक रहे, सुन्दर–सुन्दर, भीनी–भीनी सुगध देने वाले आम्रफलो पर पडी।

राजा ने कहा– देखो मत्रीवर। कितने सुगधित व सुन्दल फल हैं, कितने सुस्वाद व मधुर होगे ये फल?

मत्री ने कहा– राजन्। कुछ भी हो, आपके लिये तो ये अपथ्य हैं, आपको तो मन मे भी इन्हे खाने की बात नही सोचनी चाहिये। किन्तु राजा आम्रफलो पर मुग्ध हो चुका था। पथ्य–अपथ्य की बातो की ओर उसका ध्यान नही गया। सम्राट् बोला– अरे। अब तो बहुत वर्ष बीत चुके हें, मेरी वीमारी भी अब बिल्कुल चली गई है। अब किसलिये पथ्य रखा जाय इतने

मे तो एक पका आम टूटकर सम्राट् की गोदी मे आ पडा। मैं कोई बहुत आम तो खा नही रहा हूँ। यह कहते–कहते मत्री के बहुत मना करने पर भी राजा उसे खाने के लिये उद्यत हुआ। अब भी मत्री ने खूब समझाया पर जिह्वा के वश हुआ सम्राट् कहा सुनने वाला था ? आखिर उस आम को चूस ही लिया। अपथ्य पदार्थ के अन्दर जाते ही रोग भयकर रूप से उभरा और सम्राट् की तत्काल मृत्यु हो गई। यह है रसनेन्द्रिय के वश मे होने का परिणाम। उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट कहा है–

अपत्थ, अम्बगं भोच्चा, राया रज्ज तु हारए।

अपथ्य आम को खाकर सम्राट अपना राज्य एव जीवन गवा बैठा।

दुर्गतिकारिका स्पर्शना

रसना के पश्चात् पाचवी इन्द्रिय स्पर्शना है। स्पर्श सुखो मे रमण, मानवीय जीवन को अन्दर से खोखला बना देता है। स्पर्श विषय मानव को क्षणिक समय के लिए सुखकारी महसूस हो सकता है, अतत तो महादु ख देनेवाला बनता है। उत्तराध्ययन सूत्र मे ही प्रभु ने बतलाया है–

खण मित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा,
पगाम्म दुक्खा, अणिगाम–सुक्खा।
ससार मोक्खस्स, विपक्ख भूया,
खाणी अणत्थाण, उकाम भोगा।।

यह स्पर्श विषयक काम भोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं, किन्तु दीर्घकाल तक दु ख देने वाले हैं। जिसमे स्वल्प सुख हो और बहुत दु ख हो, वे सुखदायी कैसे हो सकते हैं? ये ससार को बढाने वाले हैं, अनर्थो की खान हैं, तथा मुक्ति के लिए शत्रु के समान हैं।

वधुओ! स्पर्शनेन्द्रिय मे रमण करने वाला मानव कभी भी वास्तविक शाति प्राप्त नही कर सकता। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इस स्पर्श सुख मे इतना अधिक आसक्त था कि मृत्यु के अन्तिम क्षणो मे भी पटरानी कुरुमति का नाम रटता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप चक्रवर्ती के विशाल वेभव को छोडकर भयकर सर्वाधिक दु खप्रद सातवी नरक का मेहमान बन गया।

महाशक्ति सम्पन्न हाथी भी इसी स्पर्श सुख के वशीभूत होकर अपनी पवल शक्ति को गवा वैठता है।

एक इन्द्रिय पर आसक्ति भी महान् अनर्थ का कारण बन जाती है। इसलिये आनन्दघनजी ने श्रेयास प्रभु की प्रार्थना के माध्यम से स्पष्ट कहा हे–

सयल ससारी इन्द्रियरामी, मुनिगण आतमरामी रे।

ऐन्द्रिक विषयो मे रमण करने वाला प्राणी ससार के भव प्रपच को बढाता है।

सुखाभास में सुख प्रतीति

ऐन्द्रिक सुख वास्तविक सुख नही है, सुखाभास है। कॉच का टुकडा हीरे के समान चमचमाहट करता है, किन्तु वास्तविक हीरा नही है। उसे हीरा मानने की भूल हीरे की परख से अनभिज्ञ व्यक्ति ही कर सकता है ठीक इसी प्रकार इन्द्रिय–विषय है। इनमे सुख की अनुभूति सामान्य जन ही कर सकते हैं। अन्तर की अनुभूति रखने वाला व्यक्ति कभी भी ऐन्द्रिक सुखो मे आसक्त नही होता है।

आत्मा का स्वभाव इन ऐन्द्रिक सुखो मे रमण करने का नहीं है। क्योकि पाच इन्द्रियो मे आनन्द नहीं आता है, अज्ञानतावश आनन्द मान लिया जाता है। आपने श्वान को देखा होगा जो गलियो मे इधर–उधर घूमा करता है। जब कभी श्वान किसी हड्डी के टुकडे को देखता है, तब सोचता है कि इस हड्डी मे कहीं खून होगा, इसे मै प्राप्त कर लूँ। यही सोचकर वह हड्डी के टुकडे पर दाँत गडाता है और देखता है कि खून निकला या नही ? जब यह लगा कि खून नही निकला तो बडी जोर से हड्डी को दॉतो के बीच दबाने लगता है। किन्तु हड्डी से तो खून निकलने वाला है ही नहीं, लेकिन दॉतों पर अधिक जोर देने से उसके ही मसूडो से खून रिसने लगा, श्वान उसे ही हड्डी से निकला खून मानकर चूसने लगता है। उसी मे उसे आनन्द आने लगता है।

श्वान तो अज्ञानी है किन्तु आज का अज्ञ मानव भी हड्डी के समान बाहरी तत्त्वो मे आनन्द मान रहा है और उसी को पाने के लिये अपनी शक्ति लगा रहा है। परन्तु पर पदार्थो मे आनन्द कहा है? क्या इस पाटे मे आनन्द है? सुख है? यदि पाटे मे आनन्द हो तो पाटा आनन्द का अनुभव करे। किन्तु पाटा आनन्द की अनुभूति नहीं करता हे क्योंकि उसमे आनन्द है ही नहीं। क्या मिष्टान्न मे आनन्द है? क्या भोजन मे आनन्द है? मिष्टान्न या भोजन कोई भी पौद्गलिक पदार्थ स्वय आनन्द रूप नही है। उसमे आनन्द थोपा जाता

है। जिस प्रकार हड्डी आनन्द रूप नही है, किन्तु खुद का खून ही चूस कर अज्ञानी कुत्ता आनन्द की अनुभूति करने लगता है। मिष्टान्न एव भोजन मे आनन्द नही है। न ही वे आनन्द की अनुभूति ही करते हैं। आनन्द लेने वाला चैतन्यवान प्राणी होता है। किन्तु वह अज्ञातावश इन तुच्छ पदार्थों मे आनन्द मान बैठता है।

सुख पुद्गलों में नहीं, स्वयं में

बन्धुओ! सुख पौद्गलिक पदार्थों मे नही है, स्वय आत्मा मे है। आत्मा वैभाविक अवस्था मे रहती हुई पुद्गलो मे सुख मान बैठती है। इन्द्रिया उन भौतिक तत्त्वो को पाने को उत्कण्ठित हो उठती हैं। इन्द्रियो के पीछे आत्मीय शक्ति काम करती है। कोई भी इन्द्रिय बाहरी तत्त्वो से अधिकाधिक सुख की प्राप्ति नही कर सकती। जिस इन्द्रिय को जिस विषय से सुख की अनुभूति होती है उस इन्द्रिय को उसी विषय से बार-बार सम्बन्धित किया जाय तो वह विषय सुख देने के स्थान पर दु खप्रद बन जायेगा।

जिस प्रकार कान है। कान मधुर गीत सुनने का रसिक है अर्थात् कर्मबद्ध आत्मा कान के माध्यम से गीत सुनकर सुखानुभूति करती है। यदि उसी गीत को उसे बार-बार सुनाया जायेगा, तो वह गीत जो सुख देने वाला था, वह उतना ही दु ख देने वाला बन जाएगा।

जिह्वा के माध्यम से प्राणी जिस मिष्टान्न को अधिक खाना चाहते हैं। उसी मिष्टान्न को उसे बार-बार खिलाया जायगा तो वह उसके लिए हानिकारक बन जायेगा। यही स्थिति सभी इन्द्रियो की है। आत्मा इन्द्रियो के माध्यम से कभी पौद्गलिक वस्तुओ से शाश्वत सुख की अनुभूति नहीं कर सकती है। सुख बाहर नहीं अन्दर है।

शक्ति को अन्त. में नियोजित करो

इन्द्रियो के माध्यम से जो शक्ति पौद्गलिक तत्त्वों मे खर्च हो रही है उसे अन्दर नियोजित करे तो अन्त मे विद्यमान सुख का अक्षय स्रोत उद्घाटित हो उठेगा।

कवि ने इसीलिये कहा है-

सयल संसारी इन्द्रियरामी, मुनिगण आतमरामी रे।

मुख्यपणे जे आतमरामी, ते केवल निष्कामी रे।।

ऐन्द्रिक विषयो से हटकर आत्मरामी बनिये। जब भव्य पुरुष अपनी सारी शक्ति को ऐन्द्रिक विषयो से हटाकर आत्मरमण मे नियोजित कर देगा तो निश्चित ही एक न एक दिन सुख का परम स्रोत उद्घाटित कर लेगा।

श्रेयास जिनेश्वर ने अपनी सारी इन्द्रियो को पौद्गलिक विषयो से हटाकर आत्मरमण मे नियोजित किया था। भौतिक तत्त्वो से परागमुखी बनकर अध्यात्म की ओर उन्मुख हुए थे, निष्काम भाव से रमण करने लगे थे। इसी निरासक्त आत्मसाधना के द्वारा उन्होने परम स्वरूप को प्राप्त कर लिया था।

सुज्ञ बधुओ! यदि अनन्त सुख को प्राप्त करना है तो इन्द्रियो की शक्ति को वैषयिक तत्त्वो से हटाइये और आत्म स्वरूप के जागरण मे नियोजित करिये। इन्द्रिय और मन का समीक्षण करिये। तब एक दिन अवश्य ही आत्मारामी आत्मानन्द को पा लेगा।

भौतिक और आध्यात्मिक समीक्षण

- आध्यात्मिकता और भौतिकता
  के परिवेश मे श्रेय और प्रेय
- अध्यात्म – श्रेय पथ
- श्रेय का प्रभाव प्रेय पर
- भौतिकता बनाम श्रेय पथ
- श्रेय सिद्धान्त कौन–सा?

पढम नाण तओ दया

दशवैकालिक सूत्र 4/10

पहले ज्ञान और फिर आचरण होना चाहिए। जब तक किसी भी विषय का बोध नही होता, तब तक उस विषय मे सही रूप से प्रवृत्ति नही हो सकती। सही रूप से प्रवृत्ति करने के लिये सम्बन्धित विषय का बोध होना आवश्यक है।

भौतिक पदार्थों की उपलब्धि के लिए भी जब उन तत्त्वो के बोध की आवश्यकता होती है तो आध्यात्मिक पथ पर बढने के लिए तो तद्विषयक सम्यक् बोध की अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है।

निज स्वरूप जे क्रिया साधे, ते अध्यात्म लहिये रे।
जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यात्म कहिये रे।।

श्री श्रेयास ।। 3।।

भव्य उपासको! आपके समक्ष श्रेयासनाथ भगवान की प्रार्थना का प्रसग चल रहा है। श्रेयास प्रभु चौबीस तीर्थकरो मे से ग्यारहवे तीर्थंकर हैं। श्रेयास शब्द श्रवण करते ही जीवन मे श्रेय भावना के साथ ही श्रेय पथ पर बढने की तमन्ना जाग्रत हो उठती है।

श्रेय–मार्ग एव प्रेय–मार्ग की सक्षिप्त व्याख्या कल मैं आपके समक्ष कर चुका हू। श्रेय मार्ग पर चलने वाले साधक की अवस्था कैसी बनती है? और प्रेय मार्ग पर चलने वाले साधक की दशा कैसी बनती है? इसका स्वरूप भी उदाहरणो के द्वारा मैं समझा चुका हू।

आध्यात्मिक और भौतिकता के परिवेश मे श्रेय और प्रेय

आज श्रेय मार्ग एव प्रेय मार्ग को आध्यात्मिकता एव भौतिकता के परिवेश मे समझाने के लिए स्तुति की तीसरी कडी से प्रभु की अभ्यर्थना की गयी है। किस प्रकार का आचरण अध्यात्म से सम्बन्धित है और किस प्रकार का आचरण भौतिकता से सम्बन्धित है, इसका निर्देश दिया गया है।

जब तक साधक को किस प्रकार का आचरण करना चाहिए, जिससे आत्म विकास सध सके– इसका ज्ञान न होगा, तब तक वह श्रेय मार्ग की साधना पर नही बढ सकता। प्रभु ने इसीलिए पहले ज्ञान और फिर आचरण का सकेत दिया है–

पढम नाण तओ दया।

पहले ज्ञान और फिर आचरण होना चाहिए। जब तक हित–अहित का ज्ञान नही होता– कौन–सा मार्ग आत्मा के लिए हितकर है, कल्याणप्रद है, जीवन को सुखी और शान्त बनाने वाला है? कौनसा रास्ता इस आत्मा को चार गति–चौरासी लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण कराने वाला हे? दु खो का किस–किस रूप मे सर्जन कराने वाला हे? इन बातो का विवेक नितान्त आवश्यक है। इसी वात का विवेक श्रेयास प्रभु की स्तुति मे कराया गया है।

जैसा कि कडी मे कहा हे–

निज स्वरूप से क्रिया साधे, ते अध्यात्म लहिये रे।

जिस क्रिया–आचरण से सच्चे अर्थ मे निज स्वरूप को प्राप्त करने की या स्वरूप मे स्थिर होने की साधना की जाती है। वही अध्यात्म क्रिया है। ऐसी अध्यात्म क्रिया ही श्रेय मार्ग को प्रशस्त बनाने वाली है।

अध्यात्म - श्रेय पथ

निश्चय दृष्टि से निजस्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए अहिसा, सत्य आदि से युक्त मन, वचन, काया के व्यापार को अप्रमत्त भाव की ओर अग्रसर करना अध्यात्म क्रिया कहलाती है। मन, वचन, काया का अहिसापूर्ण व्यवहार ही स्व–पर के लिए कल्याणकारी होता है।

स्थूल दृष्टि से तो मुख्यत काया और वचन का ही व्यापार परिलक्षित होता है। मन मे होने वाला व्यापार दृष्टिगत नहीं होता है किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान के ज्ञान मे तो मन का व्यापार भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मन मे भी ससार के समस्त प्राणियो के प्रति आत्मीय व्यवहार होना चाहिए। समस्त प्राणियो को आत्मवत् समझना चाहिए।

"आत्मवत् सर्वभूतेषु" के सिद्धान्त को सदा मन मे रखना चाहिये। जिस साधक का मन आत्मीय व्यवहार मे तन्मय है उस साधक के मानसिक विचारो का प्रभाव निश्चित रूप से अन्य प्राणियो पर भी पडता है।

श्रेय का प्रभाव प्रेय पर

भगवान् महावीर छद्मस्थावस्था मे विचरण कर रहे थे। विचरण के दौरान वे एक बार भयानक जगल मे प्रवेश करने लगे। जगल मे प्रवेश करने के स्थल पर ही कुछ ग्रामीण व्यक्ति खडे थे। उन्होने भगवान् को उस जगल मे जाने से रोकने की कोशिश की।

वे बोले– अरे तुम्हे मालूम नही है, इस जगल मे महा भयानक विषधर रहता है जिसकी फुकार मात्र से प्राणियो के प्राण चले जाते हैं। जिस जगल मे मानवो की तो बात दूर रही पशु–पक्षी भी दौडकर अन्य वनो मे चले गये हैं, ऐसे वन मे मत जाओ। किन्तु अध्यात्म स्वरूप मे रमण करने वाले श्रेय पथानुगामी भगवान् कहा रुकने वाले थे? वे उन ग्रामीण भाइयो की उपेक्षा कर आगे बढते चले गये। ग्रामीण व्यक्ति एक–दूसरे को कहने लगे कि यह कैसा साधु है, जो किसी की बात सुनता ही नही है। जिसे अपने जीवन की परवाह नहीं है। मुडे–मुडे मतिर्भिन्ना के अनुसार सभी अपनी–अपनी बात कहने लगे।

प्रभु महावीर तो अपने ही ध्यान मे मस्त उस भयानक जगल की ओर बढते चले गए, जिधर महा भयकर विषधर का बिल था। विषधर को ज्यो ही मानव की गध आई, त्यो ही उसकी कोपाग्नि भडक उठी। वह सोचने लगा– अहो! यह कितना साहसी है, आगे बढता ही जा रहा है। मै इसे अपनी एक फुकार मे भस्म कर देता हू यह सोचकर सर्प ने विष भरी फुकार की, किन्तु उस महामानव पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। यह देख वह और क्रोधित हुआ तथा प्रभु के पैरो मे जोरदार डक मारा। डकित स्थल से धवल रक्त प्रवाहित होने लगा। यह देखकर तो सर्प हतप्रभ हो गया। वह उस शक्तिशाली पुरुष को निहारने लगा।

इसी अवसर पर उसे भगवान् का सन्देश मिला 'बुज्झह कि न बुज्झह' जाग, जाग, क्यो नही जग पा रहा है! प्रभु के आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से सर्प के अन्तर्चक्षु खुल गये। बीते हुये भव के चित्र उसके हृदयपट पर उभरने लगे। प्रभु के सम्पर्क को पाकर पतितोन्मुख आत्मा उत्थानोन्मुख बन गई। घटना चाहे किसी भी रूप मे हो परन्तु यह सब प्रभु के मन, वचन, काया से आचरित अहिसापूर्ण व्यवहार का ही प्रभाव था। प्रभु निश्चय और व्यवहार दोनो ही अपेक्षाओ से श्रेय–अध्यात्म पथ पर चले रहे थे। प्रभु ने निज की अनुभूति के साथ ही ससार के समस्त प्राणियो के हित के लिये श्रेय पथ प्रतिपादित किया है।

भौतिकता बनाम श्रेय पथ

कवि ने अध्यात्म भाव की विवेचना के अनन्तर किस क्रिया के आचरण से साधक भौतिकता की ओर उन्मुख हो जाता है, इसका वर्णन किया है।

जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यात्म कहिये रे।

जो क्रिया नरकादि चारो गतियो मे से किसी भी गति मे ले जाने वाली हो, वह क्रिया अध्यात्म की नही है। ऐसी क्रिया भौतिकपरक है।

सुज्ञ बन्धुओ! आज के युग मे अध्यात्म के नाम से कई साधक अनेक प्रकार की अज्ञानयुक्त कठोर क्रिया करते रहते हैं। भद्रिक मानस उनकी कठोर क्रिया को देखकर खुश हो जाते हैं, उनकी दृष्टि मे ऐसे साधक महासाधक की सज्ञा पा लेते हें। यथार्थ मे ऐसे साधको की क्रिया आध्यात्मिक न होकर भोतिक होती हे। वाह्य रूप से चाहे वे साधक अपनी कठोर क्रिया को आध्यात्मिक वतलाते ह लेकिन भीतर मे तो अपनी प्रसिद्धि, पदप्रतिष्ठा

या अन्य कोई स्वार्थपूर्ति की भावना ही सन्निहित रहती है।

कई साधको के मन मे अपनी कठोर क्रिया के फलस्वरूप देवलोक या भौतिक सुख पाने की कामना रहती है या फिर कई साधक मनुष्य लोक के लोगो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये कठोर क्रिया का प्रदर्शन करते हैं। अन्य निर्मल चरित्री साधको को निकृष्ट बताकर स्वय को उत्कृष्ट बतलाते हैं।

ऐसे साधको द्वारा की जाने वाली क्रिया को आनन्दघनजी आध्यात्मिक न बतलाकर भौतिक बतलाते हैं। ये क्रियाए साधक को मुक्ति का राही न बनाकर चारगति मे परिभ्रमण कराने वाली बनाती हैं।

श्रेय सिद्धान्त कौन–सा?

श्रेयानुगामी साधक को श्रेय सिद्धान्तो का ज्ञान होना भी आवश्यक है। आज विश्व मे सिद्धान्तो की, मतो की, पथो की, सम्प्रदायो की प्रचुरता है। चार व्यक्ति भी जहॉ एकत्रित हो जाते हैं, वे भी अपने कुछ न कुछ सिद्धान्त बनाने की चेष्टा करते हैं। चार व्यक्तियो की बात तो दूर रही, एक ही व्यक्ति स्वय भी अपने आप मे थोडी समझ अधिक लेकर चलता है तो वह कह बैठता है कि ये मेरे सिद्धान्त है, तथा अपने कल्पित सिद्धान्तो को बतलाकर जनमानस को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है। जब कुछ भद्रिक लोग उस ओर आकर्षित हो जाते हैं तो वह अपना नया पथ या सम्प्रदाय खडा कर लेता है।

वस्तुत चिन्तन किया जाय तो इस प्रकार के कल्पित सिद्धान्तो से श्रेय साधना नही बन सकती है। छद्मस्थ व्यक्तियो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त पूर्णत निर्दोष नही हो सकते। छद्मस्ततावश कही स्खलन हो ही जाता है। स्खलित सिद्धान्तो का आचरण साधक को लक्ष्य से हटा देता है।

निर्दोष मूल सिद्धान्तो का प्रतिपादन तो पूर्ण ज्ञानी साधक ही कर सकता है। जो साधक सतपुरुषार्थ के बल पर आत्मा मे स्थित घातिक कर्मो की परतो को हटा देता है अर्थात् जिस साधक के घनघातिक कर्म चतुष्टय क्षपित हो गये है, जिसकी आत्मा अनन्त ज्ञानालोक से जगमगा उठी है, जिसके अन्त मे अशत भी राग–द्वेष की भावना नहीं है– ऐसा साधक ही एकान्तत निर्दोष सिद्धान्तो का प्ररूपण कर सकता है। सर्वज्ञ–सर्वदर्शी पुरुषो के द्वारा प्रतिपादित होने से द्वादशागी बिल्कुल निर्दोष है। आज जो अलग–अलग

मतो, पथो की प्रचुरता दिखलाई दे रही है वह सच्चे ज्ञान के अभाव का ही परिणाम है। अरिहत प्रभु महावीर द्वारा प्रतिपादित एकादशाग रूप श्रेयस पथ आज भी विद्यमान है।

सज्जनो! श्रेय पथ कौनसा है? इसके क्या सिद्धान्त हैं? उसका विज्ञान प्राप्त करके ही उस पथ पर बढने का प्रयास करेगे तो निश्चित श्रेयस पद पायेगे।

आज का दिन प्रश्नोत्तर का था। किन्तु प्रश्नकर्ता न होने से मैंने आपको कुछ उद्‌बोधन देना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच ज्ञात हुआ कि प्रश्नकर्ता आ गये हैं। अत अब मैं प्रवचन को यहीं समाप्त करता हू। अवशेष समय मे जो भी व्यक्ति प्रश्न करना चाहे तो वह प्रश्न कर सकता है।

(आचार्य प्रवर द्वारा इस प्रकार जनता को सम्बोधित किये जाने पर लोगो ने जो जिज्ञासाये रखी उन जिज्ञासाओ के साथ ही आचार्य प्रवर द्वारा प्रदत्त समाधान भी प्रस्तुत किया जा रहा है।)

जिज्ञासा 1— वर्तमान जीवन मे मनुष्य के जो—कुछ भी शुभ या अशुभ परिणाम बन रहे हैं वे परिणाम तथा जिन अच्छे या बुरे कार्यो मे वह लग रहा है, वे कार्य क्या पूर्वकृत कर्मों के ही परिणामस्वरूप है या अन्य कोई रहस्य है?

प्रश्नकर्ता— चौथमलजी भसाली

समाधान— सुज्ञ बन्धुओ! पूर्व जन्मो मे कृत कर्मो का परिणाम तो हमारे समक्ष स्पष्ट है। यह मानव तन, मन और वचन रूप त्रिपुटी की प्राप्ति पूर्व कृतकर्मो का ही परिणाम है। मन मे होने वाले शुभाशुभ अध्यवसाय तथा शरीरादि द्वारा किये जाने वाले अच्छे या बुरे कार्यों मे पूर्वकृत कर्मो की छाया होती हे। वर्तमान जीवन पूर्व कृतकर्मो की परिणति रूप होते हुये भी मानव अपनी विवेकशील प्रज्ञा द्वारा सत्पुरुषार्थ के बल पर अपने जीवन का नव निर्माण कर सकता हे।

यदि जीवन की हर गतिविधि को पूर्वकृत कर्मों का परिणाम मान लिया जायेगा तो उसमे ये प्रश्न पेदा हो जायेगे। प्राणी जो—कुछ भी वर्तमान जीवन मे क्रिया—कलाप कर रहा हे, वह पूर्व कृतकर्मो का परिणाम है। वर्तमान मे क्रिया—कलाप उसके पूर्वकृत कर्मो को क्षपित—नष्ट कर रहे है। इस प्रकार जव वह कृत कर्म क्षपित कर चुका तो फिर उसकी मोक्ष हो जानी चाहिये।

इस पर यदि कहा जाय कि नहीं, वह पूर्व कर्मो के भोग के साथ नये कर्म भी कर रहा है, जो कि उसके अगले जन्म का निर्माण करने वाले हैं। ऐसे कर्म भी पूर्व कर्मो के परिणामस्वरूप हैं या उसका अपना पुरुषार्थ है? यदि उसे पूर्व कर्मो का परिणाम माना जायेगा तो कोई भी प्राणी मोक्ष पा ही नही सकता। कर्म की अविच्छिन्न परम्परा चलती रहेगी, भगवान् द्वारा प्रतिपादित पुरुषार्थवाद रह ही नहीं पायेगा। अत स्पष्ट है कि प्राणियो को होने वाली सुख और दु ख की अनुभूति पूर्व कृतकर्म के परिणामस्वरूप होते हुये भी उस समय मे होने वाली राग–द्वेष की भावना या समभाव की साधना उसके अगले जीवन का सर्जन करने वाली बनती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा कर्मो के आश्रित नही है, आज जो–कुछ भी सुख–दु ख मिलता है, वह आत्मा के द्वारा किये गये शुभाशुभ क्रिया–कलापो से है। आत्मा ही अपने अच्छे या बुरे जीवन का सर्जन करने वाली है।

भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा है–

अप्पाकत्ता विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य।

अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पठि्ठअ सुपटि्ठओ।।

आत्मा ही अपने सुख–दु ख की कर्ता और भोक्ता है, अशुभ कार्यों मे प्रवृत्त आत्मा ही अपनी शत्रु है और शुभ विचारो मे प्रवृत्त आत्मा ही अपनी मित्र है।

अत शुभ या अशुभ अध्यवसाय, अच्छे या बुरे कार्य स्वय के द्वारा ही निर्मित किये जाते है। कर्म तो मात्र निमित्त है।

जिज्ञासा 2– जो मूर्तिपूजक लोग हैं, वे बहुत खर्च करके, बडे–बडे मन्दिर बनवा कर अनुष्ठान करवाते हैं। वे क्यो नही छोटी मूर्ति बनवाकर छोटे मकान मे स्थापित कर लेते? इस पर आपश्री के क्या विचार हैं?

प्रश्नकर्ता– आर एल सिघवी

प्रिसिपल, कॉमर्स कॉलेज (अहमदाबाद)

समाधान– प्रश्नकर्ता का आशय, सम्भव है श्रेय कार्य की ओर इगित कर रहा है जहा लाखो–करोडो का खर्च करके विशाल मन्दिर बनवाया जाता है, वहा उन रुपयो को बचा करके क्यो नही परोपकार मे, दीन–दुखियो

के कष्टो को मिटाने मे, शिक्षण कार्यो मे या अन्य किसी परमार्थ कार्य मे लगा लिये जाये जिससे रचनात्मक कार्यो के साथ अधिक पुण्यवानी का अर्जन किया जा सके। क्यो सिघवी सा क्या आपके प्रश्न के पीछे यही आशय रहा है न?

जी हा– सिघवी साहब ने कहा।

हॉ तो सज्जनो। यह सभी के समझने का विषय है। मैं तो यही कह सकता हू कि जितने भी व्यर्थ के खर्च है, उन्हे सीमित करके अवशेष सारी शक्ति प्राणी मात्र की रक्षा रूप परमार्थ के कार्यो मे नियोजित करना अधिक उपयुक्त है जिससे आत्मा से ममत्व का विसर्जन हो।

प्रभु महावीर ने भव्य प्राणियो को सभी बाह्य परिधियो से हटाकर उन्हे निपट आत्मिक जागरण की ओर अधिक बल दिया है। स्वय गौतम स्वामी को जिनेश्वर महावीर ने कहा– तुम जिन को नहीं देख रहे हो। जबकि स्वय भगवान् सामने उपस्थित हैं। प्रभु ने फरमाया कि तुम जिन को तभी देख सकते हो जब तुम स्वय जिन बन जाओगे। अत स्पष्ट है– प्रभु की दिव्य दृष्टि मे शरीर का भी महत्त्व नही था, उनके ज्ञान मे आत्मा का परम स्वरूप रहा हुआ था।

जिज्ञासा 3– आपश्री ने अपने प्रवचन मे बतलाया कि ससार मे श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। श्रेयस् मार्ग का अतिम परिणाम दुखों से पूर्ण निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति है किन्तु विश्व मे ऐसा देखने मे आता है कि प्रेय मार्ग की ओर लोगो का मन अधिक आकर्षित रहता है, ऐसा क्यो? इसके साथ एक प्रश्न और यह है कि जीवन शुद्धि का आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रभु भक्ति, उपदेश, ज्ञान या धर्म ही पर्याप्त है?

प्रश्नकर्ता– श्री कातिलाल शाह

समाधान– विश्व का प्रत्येक प्राणी जन्म–जन्मान्तर से मोह कर्म से घिरा हुआ है। मोह कर्म का आवरण इतना घनीभूत होता है कि जिससे आत्मा को हित–अहित का यथार्थ विवेक नहीं रह पाता, यह आत्मा अनन्त–अनन्त जन्मो से प्रेय मार्ग की ओर ही अधिक अग्रसर रही हे। कुछ पुण्यवानी से मनुष्य जन्म को प्राप्त कर लिया तथा जन्म–जन्मान्तर से प्रेय मार्ग की ओर ही अधिक आकर्षित होते हैं।

यह कारण तो पूर्व जन्म से सम्बन्धित हे वर्तमान जीवन मे भी

अनेको कारण उसे प्रेय मार्ग की ओर अग्रसर करने वाले बनते है। आज का युग अधिकाधिक भौतिकता की ओर दौडता जा रहा है, सभी ओर धन-सम्पत्ति की ही धूम मची हुई है। वातावरण भी इतना अश्लील बन चुका है कि जिधर देखो उधर प्रेय मार्ग की ओर प्रवृत्ति कराने वाले साधन मनुष्यो को मिल रहे हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र एव सारे विश्व मे भौतिक सुखो की प्रधानता परिलक्षित है। इस प्रकार के वातावरण का प्रभाव मानव को सहज ही प्रेय मार्ग की ओर मोड देता है।

श्रेय मार्ग की ओर प्रवृत्ति कराने वाले साधन ससार मे बहुत अल्पमत हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् द्वारा प्रतिपादित, श्रेय मार्ग की उपलब्धि भी भव्य उपासको को बहुत दुर्लभ हो गई है, श्रेय मार्ग के प्रतिपादक साधक भी बहुत विरले मिलेगे। अधिकाश साधको के मन मे यह भावना रहती है कि अमुक व्यक्ति मेरा भक्त बन जाय। उसे भक्त बनाने के लिये वे उसके अनुकूल ही उपदेश देगे जो कि सही अर्थो मे श्रेय मार्ग को बताने वाला नहीं होगा। और जहा श्रेय मार्ग की उपलब्धि होती भी है वहा पर भी कई भाई-बहिन इसलिए पहुचते है कि धर्म-ध्यान आदि श्रेय कार्य को करने से हमे भौतिक सुख-सम्पत्ति मिल जाय, हमारे दु ख दूर हो जाये या मेरे कोई सन्तान नही है तो सन्तान हो जाय। उनकी भावनाए उन्हे श्रेय स्थान पर ला कर भी प्रेय मार्ग की ओर मोड देती हैं। बहुत विरले मानव सच्चे अर्थो मे श्रेय मार्ग को अपना पाते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रेय मार्ग मे लोगो को जिस सुख का आभास होता है हालाकि वहा वास्तविक सुख नही है। किन्तु मृग मरीचिका की तरह साधारण मानवो का उधर ही अधिक आकर्षण बढता है।

दूसरा प्रश्न आपका था कि भक्ति, ज्ञान या धर्म ही आत्मिक आनन्द के लिए पर्याप्त हैं? सुज्ञ बन्धुवर। प्रभु ने निपट ज्ञान या मात्र आचरण को ही आत्मानन्द मे कारण नही माना है। किन्तु ज्ञान और क्रिया का सम्मिलित रूप ही परमानन्द का कारण बनता है। ज्ञानी जनो ने स्पष्ट कहा है-

'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष'

ज्ञान-क्रिया के आचरण से ही आत्मा परमानन्द को प्राप्त कर सकती है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए एक अध-पगु का उदाहरण भी मिलता है।

भयानक दावानल से अपने को बचाने के लिए एक अधा और दूसरा पगु विह्वल हो उठे। लेकिन अकेला अधा या अकेला पगु अपने को बचा नहीं सकता। पगु के ऑखे होते हुए भी पैर न होने से दौड नही सकता। अधे के पैर होते हुए भी ऑख न होने से वह दावानल से बच नही सकता किन्तु जब पगु व अधा दोनो की शक्तियॉ मिल जाती हैं, तो वे उस दावानल से बच सकते हैं। इसी प्रकार यह आत्मा राग–द्वेषपूर्ण भयानक दावानल से बचकर परमानन्द को तभी प्राप्त कर सकती है जब वह ज्ञान और क्रिया को सम्मिलित रूप से जीवन मे अपनावे।

अकेला ज्ञान या अकेली क्रिया आत्मा को सुखी नहीं बना सकती। परमानन्द का स्रोत तो स्वय के भीतर ही विद्यमान है, आवश्यकता है ज्ञान, क्रिया की सम्मिलित साधना से उस स्रोत पर आए कर्म कलिमल को हटाने की।

जिज्ञासा 4— मेरा प्रश्न कल के व्याख्यान से सम्बन्धित है। आपश्री ने कल प्रवचन मे फरमाया था, अनीति की कमाई मे स्त्री–पुरुष दोनो सहभागी हैं, तो उसी अनीति की कमाई से घरो मे रसोई भी बनती है। जिसे सत–सती भी ग्रहण करते हैं, तो क्या वे उसके सहभागी नही होगे? साथ ही अनीति की कमाई सामाजिक कार्यो मे भी काम मे आती है, जिससे सघ के सकल सदस्य भी क्या उस कमाई मे सहभागी नही बनेगे?

प्रश्नकर्ता– हेमन्तकुमार नाहर

समाधान— सर्वप्रथम यह समझना आवश्यक है कि नीति या अनीति किससे सम्बन्धित है। चैतन्य से या जड से। क्या यह पाटा नीति– अनीति को समझता है? क्या इसमे नीति या अनीति का परिणाम आ सकता है?

जी नही (प्रश्नकर्ता ने कहा)।

अत स्पष्ट है– नीति या अनीति, चैतन्य आत्मा के परिणाम हैं। आत्मा के अशुद्ध परिणाम अनीति और आत्मा के शुद्ध परिणाम नीति हैं। मैंने जो कल कहा था कि व्यापार मे होने वाले अनीति–पाप का भागीदार जैसे वह भाई होता हे वैसे ही उसकी धर्मपत्नी भी होती है। क्योकि अनीति करने का परिणाम उस व्यापारी का है तो अनीति कराने का परिणाम उसकी धर्मपत्नी का है। इन परिणामो के कारण ही दोनो का पाप का भाग मिलता है। परिणाम के कारण जीवो के साथ कर्मो का बन्धन होता है। अब आपका प्रश्न है कि उस नीति से अर्जित धन से बनाए गए भोजन को सत–सती भी

लेते हैं तो उन्हे भी उसका पाप लगना चाहिए? यहा पर विचार करना है कि कर्म बन्धन या पाप का हिस्सा तदनुरूप परिणामो के होने पर आता है। क्या सतो की भावना श्रावको से अनैतिकता से काम कराने की है?

सच्चा सत मनसा, वाचा, कर्मणा कभी भी अनैतिकता नहीं चाहता। सत जीवन अगीकार करने के साथ ही सभी सावद्य पापकारी कार्यों का त्याग हो जाता है। पापकारी कार्यों के अन्तर्गत अनीति भी आ जाती है। सत स्वय अनीति करते नही, किसी से करवाते नहीं और करने वाले को अच्छा भी नहीं समझते। ऐसी स्थिति मे सतो को अनीति से किए व्यापार का भाग कैसे मिल सकता है?

हाँ, सत अन्न और जल तो गृहस्थो के घरो से ही लेते हैं। परन्तु सतो के नीति और अनीति का प्रावधान दूसरी प्रकार से है। जिस प्रकार आपके व्यापार करने की मूल्य सूची सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है, उसके अनुसार यदि व्यापार किया जाता है तो वह नीति का होता है। यदि उस मूल्य सूची को तोडकर व्यापार किया जाता है तो वह अनीति का होता है। जिस प्रकार सरकार ने आपके लिए मूल्य सूची बना रखी है, उसी प्रकार सतो के लिए अन्न और जल ग्रहण करने के लिए सर्वज्ञ–सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने सारा विधान कर रखा है, साधु को 42 दोष टाल कर आहार–पानी लाना होता है। साधु पाच महाव्रत पालन करने के साथ ही 42 दोष टालकर आहार–पानी ग्रहण करता है तो वह अन्न–जल उसके लिए नैतिक है। यदि वह भगवान् द्वारा बतलाए गए नियमो का पालन नही करता है तो उसका अन्न–जल ग्रहण अनैतिक बन जाता है।

यह तो मैं पहले बतला चुका हू कि स्वय अन्न या जल नीति या अनीति नहीं हैं। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छोटा रूपक है। किसी करोडपति के भवन निर्माण हेतु बहुत से मजदूर काम कर रहे हैं। मजदूरो के लिए जितने घण्टे काम करने को कहा गया है, मजदूर उतने ही घण्टे ईमानदारी से काम करके सेठ से अपनी मजदूरी लेता है। सेठ ने झूठ, चारी, अन्याय, अनीति करके जो धन कमाया है उसी धन मे से मजदूर को मजदूरी देता है। अब बतलाइये ऐसा धन मजदूर के लिए नीति का है या अनीति का?

नीति का (प्रश्नकर्ता ने कहा)।

क्यो?

वह इसलिए कि मजदूर तो अपनी मजदूरी की विधि–ईमानदारी से

काम करके मजदूरी ले रहा है। सेठ ने चाहे धन कैसे ही उपार्जित किया हो, उस मजदूर के लिए तो वह नीति का है।

ठीक इसी प्रकार उसी सेठ के घर मे उसी अनीति से उपार्जित धन से भोजन तैयार होता है। कोई पच महाव्रती साधु उसके घर आहार लेने पहुच जाय और वह भगवान् के बतलाए विधि–विधान के अनुसार बयालीस दोष टालकर आहार–पानी ग्रहण करे तो मजदूर को प्राप्त मजदूरी की तरह ही वह आहार–पानी साधु के लिए शुद्ध एव नीति का होता है।

दूसरी बात प्रश्नकर्ता की यह थी कि उसी सेठ का अनीति से उपार्जि धन समाज मे काम आता है तो उस अनीति का भाग सघ सदस्यो को भी मिलना चाहिए। समझने का विषय यहा पर यह है कि शुभ भाव से समाज के सदस्य उससे पैसे ले रहे है। यदि समाज के सदस्य अनीति को अच्छा नही समझते हैं और जो पैसा ग्रहण कर रहे हैं वह भी जनहित मे लगा रहे हैं। जिससे दो लाभ होते हैं, एक तो दाता का उन पैसो से ममत्व हटता है और समाज के अन्य सदस्यो को लाभ मिलता है। तो उसमे सघ के सदस्यो को उसकी अनीति का भाग कैसे आ सकता है? नही आता। यही नही, यदि पत्नी अपने पति के अनीतिपूर्ण कार्य मे करने, कराने या अच्छा समझने मे से किसी मे भी सम्मिलित नही होती है। जो कथा मे गत दिन वकील साहब की कह गया था। उनकी धर्मपत्नी ने उनके अनीति से उपार्जित पैसे को कतई स्वीकार नही किया, उस पैसे को वापस लौटा दिया, इस प्रकार नीति पर चलने वाली पत्नी को अनीति के पाप का हिस्सा प्राप्त नहीं होता।

जिज्ञासा 5– जन्म एक है या अनेक? यदि अनेक है तो पूर्व जन्म का स्मरण क्यो नहीं रहता? क्या देव भी मनुष्य गति पाने के लिए तडपते हैं?

प्रश्नकर्ता– विमलचन्द देवडा

समाधान– जन्म तो अनेक ही नही अनन्त हैं। यह आत्मा अनन्तानन्त जन्म–मरण कर चुकी है। शरीर तो वस्त्र परिवर्तन की तरह है। जैसे वस्त्र परिवर्तन होते हैं, उसी प्रकार शरीर का भी परिवर्तन होता रहता है– पूर्व जन्म की स्मृति भी अनेक को रहती है। आपने दैनिक, पाक्षिक, मासिक आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओ को देखा एव पढा होगा। अमुक व्यक्ति को पूर्व जन्म की स्मृतिया अभी भी हैं। पत्रिकाओ मे उसके फोटो तक दिए जाते हैं।

हॉ, पूर्व जन्म के सस्कार सभी को याद नहीं रह पाते। इसका कारण

यह है कि ज्यो ही गत जीवन को छोडकर नये जीवन मे प्रवेश करता है, त्योही उसके सामने नये सस्कार आने लगते है, जिससे वह गत जीवन के सस्कारो को भूलता चला जाता है। यह तो गत जीवन की बात है। आज के लोगो को इस जीवन की घटनाए भी याद नही रहती। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप पढ–लिखकर ग्रेजुएट बन गए है। क्या आपको याद है कि आपकी दसवी कक्षा के पेपर मे कितने प्रश्न थे और कौन–कौन से?

क्या अब आप उनका उत्तर दे सकते हैं?

जी नही– प्रश्नकर्ता ने कहा।

यही नही, आपने पाच दिन पहले कौनसी सब्जी खाई थी, यह भी आपको याद है या नही?

जी नही– प्रश्नकर्ता ने कहा।

तो जब आपको इतने सन्निकट जीवन की बाते भी याद नही रहती तो गत जीवन की बाते कैसे याद रह पायेगी? जो किन्ही–किन्ही को पूर्व (गत) जीवन की बाते याद आती हैं, उनको आज के जीवन मे कभी–कभी पूर्व के सस्कार जाग्रत हो जाते हैं।

बचपन मे तो प्राय पूर्व भवो के सस्कार जाग्रत रहते हैं। आपने कभी ध्यान से बच्चे की गतिविधि देखी हो तो ज्ञात होगा कि बच्चा बिना किसी कारण पालने मे झूलता–झूलता किलकारिया मारने लगता है और बिना किसी कारण ही रोने लग जाता है। यही नही, उसके चेहरे पर विविध भाव–भगिमा उभरने लगती है। जब उसे सुख की बाते याद आती हैं तो वह खिल उठता है और जब दु ख की बाते याद आती हैं तो वह मुरझा जाता है। किन्तु ज्यो–ज्यो उसका नवीन जीवन मे प्रवेश होता जाता है, पूर्व की बाते स्मृति से ओझल हो ही जाती हैं, इस कारण पूर्व भव की बाते याद नही रहतीं।

दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि स्वर्ग मे जो सम्यक् दृष्टि देव होते हैं, वे जब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवतो की वाणी सुनते हैं तो उनमे यह भावना बलवती हो उठती है कि हमे भी मानव जीवन प्राप्त हो और धर्म का पालन कर हम भी शीघ्र मुक्ति मे चले जाये। उनके यहा तक के विचार बतलाए जाते हैं कि वे श्रावक के पुत्र नहीं बन सके तो उनके दास बनने के भी इच्छुक रहते हैं। क्योकि श्रावक के यहा जन्म लेने से उन्हे धर्म सुनने, समझने एव आचरण करने को मिलेगा।

OOO

क्रिया-प्रतिक्रिया समीक्षण

- क्रिया के तीन रूप
- दो प्रकार से मन की प्रवृत्ति
- क्रिया की प्रवृत्ति शुभ मे या अशुभ मे
- सामायिक की क्रिया
- मन की क्रिया
- विचित्र रूप महायोगी का
- श्रेणिक की वार्ता प्रभु से
- वार्ता सुमुख–दुर्मुख की
- मन की तीव्र क्रिया–प्रतिक्रिया
- निज समीक्षण करे

जोग सच्चेण जोग विसोहेइ

–उत्तराध्ययन सूत्र–26/53

योग सत्य से जीवन, मन, वचन और काय की क्रिया को विशुद्ध करता है।

विश्व के प्रत्येक मानव के पास तीन योग हैं– मन, वचन और काया। इन त्रियोगो की अशुभ प्रवृत्ति से आत्मा का अध पतन हो जाता है और इन्ही की शुभ प्रवृत्ति से आत्मोत्थान हो जाता है। आत्मोत्थान के लिये योग कषायजनित आत्मा की क्रिया का समीक्षण करना होगा। जब भव्य साधक अपनी मानसिक, वाचिक, कायिक क्रिया का समीक्षण करने लगेगा और समीक्षण के साथ उन्हे अशुभ से हटाकर शुभ मे नियोजित करेगा तो लक्ष्य तक पहुँच जाएगा।

OOO

निज स्वरूप से किरिया साधे, ते अध्यातम लहिये रे।
जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यातम कहिये रे।।

।। श्री श्रेयांस।।

कवि ने श्रेयास प्रभु की प्रार्थना के साथ क्रिया विषयक चर्चा की है। ससार के समस्त प्राणी किसी न किसी प्रकार की क्रिया प्रति समय करते रहते हैं। क्रिया मुख्यत योग के द्वारा की जाती है, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जिस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, वह योग है। वह मन, वचन, काया के मुख्य माध्यम की अपेक्षा लेकर तीन प्रकार का है। मन योग के चार, वचन योग के चार और काय योग के सात मिलाकर योग के 15 भेद भी बन जाते हैं।

कर्मबद्ध समस्त आत्माएँ सिद्धान्त की दृष्टि से 24 दडको में विभाजित हैं। 24 दडको का ज्ञान तो आप लोगो को होगा ही। सभा मे दृष्टि डालने से ज्ञात हो रहा है कि कई लोगो को नही होगा। अत मैं ही आपको बतला देता हूँ कि सात प्रकार की नारकी का एक दण्डक, दस भवनपति देवताओ के दस दण्डक, व्यन्तर देवताओ का एक दण्डक, ज्योतिषी देवताओ का एक दण्डक, वैमानिक देवताओ का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक, पॉच स्थावर कायिक जीवो के पॉच दण्डक, बेइन्द्रिय का एक दण्डक, तिर्यंच पचेन्द्रिय जीव का एक दण्डक। इस प्रकार 24 दण्डको मे सभी ससारी प्राणी आ जाते हे। इन चोबीस ही दण्डको मे प्रत्येक दण्डक मे किसी न किसी प्रकार का योग रहता है। तीन योगो मे से नारकी, देवता, सज्ञी मनुष्य, सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय मे तीन योग होते है। तीन विकलेन्द्रिय, असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय, असज्ञी मनुष्य मे मनोयोग रहित दो योग होते है। पाच स्थावर कायिक जीवो मे एक काया योग ही पाया जाता है।

जिन जीवो के पास जितने योग विद्यमान हैं, वे जीव उतने ही योगो से क्रियाशील वन जाते हैं। चाहे एक योग हो या तीनो हो, क्रिया प्रतिक्षण चलती रहती है।

क्रिया के तीन रूप

मन, वचन, काया के योगो से होने वाली क्रिया कर्म वन्धन का कारण बनती है। जिन क्रियाओ के साथ कपाय की प्रधानता होती है, वे क्रियाएँ अधिक कर्मो का वन्धन कराने वाली होती हैं। और जो योग सम्वन्धी

क्रियाएँ कषायरहित होती है वे क्रियाएँ आपेक्षिक दृष्टि से अल्पकर्म बधाने वाली होती हैं। जैसे– प्रथम से लेकर दस गुण स्थानवर्ती आत्माओ मे योग के साथ कषाय भाव भी होने से ग्यारह आदि गुणस्थानो मे शमित–क्षपित की अपेक्षा अधिक कर्म बन्धन होता है।

कषाय के द्वारा मन, वचन, काय की क्रिया मे अधिक परिस्पन्दन होने से कर्मो का भी गहरा बन्धन हो सकता है। लेकिन कषायरहित योग सम्बन्धी क्रियाओ मे काषायिक परिस्पन्दन का अभाव होने से कर्म बन्धन अत्यल्प होता है।

ग्यारहवे आदि गुणास्थानो मे एक एर्यापथिकी क्रिया ही होती है। अत वहा योग सम्बन्धित परिस्पन्दन अधिक कर्मबन्धन वाला नही होता है। पहले समय मे कर्मबन्धन है तो दूसरे समय मे छूट जाता है।

कषाययुक्त योग से सम्बन्धित क्रियाओ से यदि अनिकाचित कर्म बध ान हुआ हो तो उसे भी शुभ अध्यवसायपूर्वक सत्यपुरुषार्थ के द्वारा आत्मा से विलग किया जा सकता है।

शरीर क्रिया तो दुनिया की दृष्टि मे आ जाती है। वचन की क्रिया भी दृष्टि मे आ जाती है, परन्तु मन की क्रिया इतनी सूक्ष्म रहती है कि स्थूल दृष्टि मे नही आ पाती है। मन की क्रिया अन्दर मे हाती है। जिस प्रकार घडी के सैकिण्ड का काटा अनवरत चलता रहता है, रुकता नही है। रुक जाय तो घडी ही बद हो जाती है। उसी प्रकार मनुष्य की मानसिक क्रिया अथवा दिल की धडकन रूप क्रिया प्रतिक्षण चलती रहती है, यदि ये क्रियाएँ रुक जाये तो शरीर मे स्थित चैतन्य ही स्थानान्तरित हो जाय, अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है।

दो प्रकार से मन की प्रवृत्ति

मन की स्थिति दो प्रकार की होती है। एक मन बाहर मे प्रवृत्ति कराने वाला होता है, तो एक मन भीतर मे प्रवृत्ति कराने वाला होता है। जिन्हे वैज्ञानिक परिभाषा मे कान्शियस माइण्ड तथा अनकान्शियस माइण्ड कहते हैं। अर्थात् भीतरी प्रवृत्ति का साक्षी अजाग्रत मस्तिष्क है, और बाहरी प्रवृत्ति का साक्षी जाग्रत मस्तिष्क है।

कई योगी योगबल के द्वारा बाहरी क्रियाओ को रोक लेते है। यहा

तक कि नाडी सचार भी रुक जाता है, तथापि उसके अन्दर मे मानसिक क्रिया के साथ सूक्ष्म रूप से शारीरिक क्रियाओ का भी सचरण होता रहता है। जब तक इन त्रियोग से सम्बन्धित क्रियाओ को सही तरीके से नही समझेगे तब तक धार्मिक क्रिया या आध्यात्मिक क्रिया को भी नही समझ पायेगे। जब व्यक्ति का यह समीक्षण नहीं होगा कि जो क्रिया मैं कर रहा हूँ वह ससार बढाने वाली है या ससार घटाने वाली है, भव परम्परा को बढाने वाली है या भव परम्परा को उच्छिन्न करने वाली है, तब तक उसकी क्रिया यथार्थ दशा की ओर नही हो पाएगी। अत क्रिया के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

क्रिया की प्रवृत्ति शुभ में या अशुभ में

मन, वचन और काया रूप योगो के द्वारा क्रिया की प्रवृत्ति शुभ कार्य मे भी हो सकती है तो अशुभ मे भी। हिसात्मक कार्य मे भी हो सकती है तो अहिसात्मक कार्य मे भी। जिस प्रकार सुई को सीने के काम मे भी लिया जा सकता है, तो उसे किसी के चुभाया भी जा सकता है। काटे से काटा निकाला भी जा सकता है तो काटे को शरीर मे गडाया भी जा सकता है। इसी प्रकार त्रियोग से युक्त क्रिया के द्वारा आत्मा पर स्थित कर्मो की परतो को हटाया जा सकता है, तो उन्हीं त्रियोग से बधित क्रियाओ के अशुभाचरण से आत्मा को कर्मों से मलीमष भी बनाया जा सकता है। मन, वचन, काय रूप क्रियाओ की प्रवृत्ति को किस प्रकार गतिशील करना चाहिए, इसका विवेक व्यक्ति को होना आवश्यक है। जब तक वह इस विवेक से अनभिज्ञ रहेगा तब तक आत्मा का मौलिक स्वरूप प्राप्त नही कर सकता। उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट कहा है–

जोग सच्चेण जोगं विसोहेइ।

योग सत्य से जीव मन, वचन काया की क्रिया को विशुद्ध करता हे। यह विशुद्धि योग समीक्षण से सम्बन्धित है।

सामायिक की क्रिया

सामायिक करना भी एक क्रिया है। प्रथम तो सामायिक करने का विचार ही वहुत कम लोगो के मस्तिष्क मे आता हे। जो लोग सामायिक करते भी है तो सामायिक की सारी क्रिया नही कर पाते हैं। वहुत कम साधक विधि सहित सामायिक करने वाले होगे। कपडे खोल कर श्वेत चादर ओढ लेना, मुख वस्त्रिका का लगा लेना थोडी वहुत धार्मिक पुस्तक पढ लेना, माला फेर

लेना या और कुछ करके सामायिक पूरी कर लेना, यह सब सामायिक की ऊपरी क्रिया है। यद्यपि ये क्रियाएँ भी आपको आध्यात्मिकता की ओर बढाने वाली हैं तथापि यह नही समझना चाहिए कि हमारी सामायिक पूरी आ चुकी है। क्योकि इतने मात्र से जो सामायिक उपलब्धि होनी चाहिये, जो क्षमता की मात्रा आनी चाहिये, जो सभी क्षण की साधना सधनी चाहिये, वह नही सध पाती। सामायिक की आराधना यदि सही ढग से की जाये तो उससे साधक को बहुत–कुछ उपलब्धि हो सकती है।

आपने पूणिया श्रावक का नाम सुना होगा। पूणिया श्रावक भी तो आप ही की तरह श्रावक था। वह भी गृहस्थावस्था मे रहकर सामायिक किया करता था, किन्तु उसकी सामायिक कितनी मूल्यवान थी? सम्राट् श्रेणिक का 52 डूँगरी सोना तो उसकी दलाली मे भी पर्याप्त नही था। प्रभु महावीर द्वारा श्रेणिक के नरक टालने के बतलाये गये उपायो मे एक उपाय यह भी था कि यदि वह पूणिया श्रावक की एक सामायिक खरीद ले, तो उसका नरक गमन टल सकता है।

बधुओ! प्रभु ने सामायिक का कितना महत्त्व बतलाया है। सामायिक आप भी करते हैं। किन्तु वैसी विधि–क्रिया कितनी साधते हैं? यह बात आप अपने–अपने मनो मे विचार लीजिये। यदि मैं सामायिक के 32 दोष पूछने बैठूँ, तो बहुत कम व्यक्तियो को मालूम होगे। इतने मात्र से आपको हताश नही होना है। किन्तु जो सामायिक आप करते हैं, लाभ उससे भी होता है किन्तु जितना होना चाहिए, उतना नही हो पाता। सामायिक की 48 मिनट की साधना मे तथा अन्य गृहीत व्रतो में दोष लग जाते हैं, तो उनकी भी आलोचना आवश्यक है। जिससे प्रायश्चित्त लेकर शुद्धिकरण किया जा सके। बिना प्रायश्चित्त लिये ही कभी अनालोचित अवस्था मे तथा कपटपूर्ण आलोचना के परिणाम मे यदि आयुष्य बधन भी हो जाता है, तो तिर्यंच आयुष्य का बधन भी हो जाता है। प्रभु ने अढाई द्वीप के बाहर भी श्रावक बतलाए हैं। वे श्रावक तिर्यंच होते हैं। जब–कभी सयोगवश उन्हे जाति स्मरण ज्ञान हो जाता है, तब उन्हे ज्ञात होता है कि अहो! हमने मनुष्य जीवन मे श्रावक व्रत अगीकार किये थे। किन्तु व्रतो मे जो दोष लगे, उनकी आलोचना, निन्दा नही की, परिणाम स्वरूप मरकर तिर्यच बन गए। इस प्रकार वे पश्चात्ताप करते हुए पुन यथाशक्य श्रावक व्रत स्वयमेव ही अगीकार कर लेते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि सामायिकादि किसी भी व्रत की आराधना क्रिया को शुद्ध रीति से

करने का प्रयास करना चाहिये। यदि उसमे कोई दोष लग जाय तो आलोचना कर, प्रायश्चित्त लेकर शुद्धिकरण कर लेना चाहिये।

मन की क्रिया

कवि आनन्दघनजी का कहना है कि 'निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यात्म कहिये रे।' जो क्रिया निज स्वरूप को बतलाने वाली होती है, उसे ही आध्यात्मिक कहा जा सकता है। मन की गति–क्रिया इतनी सूक्ष्म और तीव्र होती है कि जल्दी से साधक उसे पकड नही पाता। मन की गति–क्रिया को साधे बिना, समीक्षण किये बिना आत्म–स्वरूप सध नही सकता। आत्म–स्वरूप को साधने के लिये मन की गति का समीक्षण आवश्यक है। आगार अवस्था से हटकर अनगार अवस्था मे विचरण करने वाला साधक भी मन की सूक्ष्म गति का यथायोग्य समीक्षण नही कर पाता है तो वह भी साधना पथ से गिर सकता है। मन का वेग किस तीव्रता के साथ बढता है। शुभ की ओर गति करने वाला मन आत्मा को कहॉ से कहॉ तक पहुँचा देता है और अशुभ की ओर गति करने वाला मन आत्मा को कहॉ से कहॉ तक पहुचा देता है, इसका समीक्षण किस प्रकार किया जाय इसके लिए मैं उदाहरण उपस्थित कर देता हूँ।

विचित्र रूप महायोगी का

राजगृह नगरी के वाहर, दोनो भुजाएँ ऊपर करके, सूर्याभिमुख हो, एक महायोगी ध्यान साधना मे तन्मय वने हुए थे। प्रात वेला मे सम्राट् श्रेणिक भगवान महावीर स्वामी को वन्दन–नमस्कार करने के लिये नगर से वाहर निकले। नगर से वाहर निकलते ही उनकी दृष्टि ध्यान साधना मे स्थित महायोगी पर गिरी। उनकी प्रखर ध्यान साधना को देखकर श्रेणिक का मस्तक श्रद्धावनत हो गया। भाव–विभोर होकर सम्राट् ने महायोगी को वन्दन–नमस्कार किया और गुणशील उद्यान की ओर प्रस्थित हुआ। जव वह भगवान् महावीर के चरणो मे पहुँचा, वन्दन–नमस्कार कर भगवान् की ओर आसन पर वेठ गया तव तक भी उसके मन मे राजगृह के वाहर ध्यानस्थ महायोगी के विषय मे विचार चल रहे थे। आखिर सम्राट् ने सशयहर्ता, सर्वज्ञ–सर्वदर्शी पूछ ही लिया– भगवन् आपके शिष्य, जो नगर से वाहर सूर्याभिमुख हो दोनो भुजाए ऊपर करके ध्यान मे तल्लीन हैं, यदि वे इस समय काल धर्म को प्राप्त हो जाय तो कहॉ जाय?

सम्राट के प्रश्न को श्रवण कर वीतरागी प्रभु ने, जिनको न अपनो पर राग था न अन्यो पर द्वेष, जो वीतराग अवस्था मे रमण कर रहे थे, स्पष्ट फरमाया– श्रेणिक! यदि वह साधक उस समय आयुष्य बन्धन कर ले तो सातवी नरक मे जाय। भगवान् ने यह उत्तर देते समय नही सोचा कि मैं अपने शिष्य के विषय मे ऐसा कहूँगा तो जनता क्या सोचेगी। लोगो की श्रद्धा उठ जायेगी, इसलिये यह बात नही कहनी चाहिए। परन्तु प्रभु ने जो बात जैसी थी, वैसी ही स्पष्ट कर दी। नीतिकार ने सत्य ही कहा है–

पक्षपातो न मे वीरो, न द्वेष कपिलादिषु।

युक्तिमद् वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ।।

न तो मेरा प्रभु के प्रति राग है, न अन्य कपिलादि दर्शनो पर द्वेष ही। युक्ति–युक्त वचन जिसके भी हो, वही ग्राह्य हैं।

प्रभु ने अपने शिष्य के प्रति भी मोह न करके, सत्य बात को स्पष्ट कर दी। ऐसे वीतरागी देवो के वचन निश्शक ग्राह्य होते हैं।

श्रेणिक की वार्ता प्रभु से

सम्राट् श्रेणिक तो इस बात को सुनकर एकदम स्तब्ध हो गया। अहो! इतने बडे योगी, इतनी कठोर साधना मे तल्लीन, क्या वे भी सातवी नरक मे जा सकते हैं ? प्रभु के वचनो मे सदेह का तो कोई अवकाश ही नही है। इस प्रकार सम्राट् श्रेणिक के मन मे विचार चल रहे थे। विचारधारा फूट पडी वचनो के माध्यम से– क्या भगवन् ऐसा भी हो सकता है? तब प्रभु ने कहा– राजन्! यदि इस समय वे योगी काल कर जाय तो देवलोक मे जाय।

यह विचित्र बात सुनकर तो सम्राट् के मन मे उथल–पुथल मच गई। अरे! कुछ क्षण पूर्व जिस योगी के लिये प्रभु ने नरक बतलाया, उसी योगी के लिये अब स्वर्ग बतला रहे हैं। यह विचित्र स्थिति कैसे बन गई? कुछ ही क्षणो मे इतना परिवर्तन कैसे हो सकता है? कुछ समझ मे नही आ रहा है। भगवान् का कथन तो अवितथ सत्य है। मेरी अल्प बुद्धि तथ्य को समझ नही पा रही है। बाहर से इतनी सयमपूर्ण अवस्था परिलक्षित होते हुए भी इतना परिवर्तन किस प्रकार हो जाता है? सम्राट् के मन मे इस प्रकार विचार चल ही रहे थे। इतने मे आकाश मे देव दुदुभि गूँज उठी। अहो ज्ञान! अहो ज्ञान की तुमुल उद्घोषणा होने लगी। इस तुमुल स्वर से सम्राट् श्रेणिक की विचारधारा टूट गई। वह सोचने लगा– यह आवाज कहा से आ रही है? दिव्य

ज्ञानी प्रभु तो यहाँ विद्यमान है, और देव किसके लिए– अहो ज्ञान, अहो ज्ञान की उद्घोषणा कर रहे है?

प्रभु घट–घट के अन्तर्यामी होते हैं, उनके ज्ञान मे ससार की कोई भी वस्तु अदृश्य नही रहती है। कवि आनन्दघनजी ने कहा है–

श्री श्रेयास जिन अन्तरजामी, आतमरामी नामी रे।

अध्यात्म मत पूरण पामी, सहज मुगति गतिगामी रे।।

यह बात श्रेयास जिनेश्वर के लिए ही नही है। समस्त तीर्थकर अन्तर्यामी हैं। आत्मस्वरूप मे रमण करने वाले हैं। तीर्थंकर देव अध्यात्म ज्ञान मे पूर्णता पाकर सहज ही मुक्तिगामी हो जाते है। प्रभु महावीर ने भी श्रेणिक की विचारधारा जान ली और कहा– सम्राट्! क्या सोच रहे हो? वही योगी, जिसके लिये तुम चिन्तन कर रहे थे, अब घनघाती कर्म को क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त कर चुके हैं। जितना ज्ञान मुझ मे है, उतना ही ज्ञान उसकी आत्मा मे भी उद्भासित हो चुका है। उनकी आत्मा इसी जगत् मे मुक्तिगामी बन गई है अर्थात् वे योगी इसी भव मे मुक्ति को प्राप्त करेगे।

सम्राट् ने, प्रभु के मुख से ज्यो ही यह बात सुनी तो उसकी जिज्ञासा की कोई सीमा नही रही। वह सोचने लगा– आज यह क्या हो रहा है? जो साधक कुछ क्षणो पहले महानरक मे जाने की स्थिति मे थे, वे ही साधक कुछ क्षणो के बाद स्वर्ग मे जाने वाले बन गये, तथा अब तो केवलज्ञान, केवलदर्शन को पाकर मुक्तिगामी बन गये हे। बडा विचित्र रहस्य हे।

वार्ता सुमुख-दुर्मुख की

भगवान् क्या फरमा रहे हैं, आप! आपश्री के विशिष्ट ज्ञानलोक मे आलोकित तथ्य को मेरी मति समझ नही पा रही है। यह तो सत्य है–

तमेव सच्च णीसकं जं, जिणेहि पवेइय।

वही सत्य हे, जो जिनेश्वर देव द्वारा प्ररूपित है। भगवान्! आपके वचनो मे मुझे कोई सदेह नही हे। परन्तु मेरी जानने की जिज्ञासा हे कि नरक–स्वर्ग अन्य वर्ग की अवस्था योगी के जीवन मे कुछ क्षणो मे किस प्रकार परिवर्तित हो गई?

प्रभु ने समाधित किया सम्राट् की जिज्ञासा को– राजन्! इस

परिवर्तन के लिये बाहरी परिवर्तन होना आवश्यक नही है। स्थूल दृष्टि मे अन्तरग का परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। वह परिवर्तन समीक्षण दृष्टिपूर्वक अन्तरग के ज्ञान से ही जाना जा सकता है। जिन योगी को तुमने सूर्याभिमुख होकर ध्यान साधना मे देखा था उनके कानो मे सुमुख और दुर्मुख नाम के दो व्यक्तियो के शब्द सुनाई दिये। सुमुख ने दुर्मुख से कहा– धन्य है ऐसे महायोगी को जो विशाल वैभव, साम्राज्य को त्याग कर कठोर साधना मे तन्मय बने हुए हैं।

दुर्मुख को यह बात नही जॅची, वह अपने नाम के अनुसार ही दुर्मति से सोचने लगा और बोला– सुमुख, तुम भोले हो, इस तथ्य को समझ नही पा रहे हो। यह महायोगी तो कायर है। इसने अपने अबोध बच्चे को 500 मत्रियो के हाथो मे सौंप कर दीक्षा अगीकार कर ली है। वे 500 मत्री गुप्त मत्रणा करके इस निर्णय पर पहुॅच गये हैं कि इस बच्चे को मारकर सारे राज्य को हथिया ले। वे इस फिराक मे हैं कि कब बच्चे को मारे और कब राज्य हडप ले। इसलिए मेरा यह कहना है कि वह योगी वन्दनीय कैसे हो सकता है जो अपने बच्चे की रक्षा नही कर सकता, वह अपनी क्या रक्षा करेगा?

मन की तीव्र क्रिया-प्रतिक्रिया

सुमुख और दुर्मुख दोनो के शब्द योगी के कानो मे पडे। मन ने शब्दो पर क्रिया–प्रतिक्रिया करना प्रारम्भ कर दिया। सुमुख के शब्दो को श्रवण कर वह प्रफुल्लित हो उठा तो दुर्मुख के शब्दो को श्रवण करते ही तीव्र क्रिया–प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो उठी। अहो ! क्या ये मत्री मेरे बच्चे को मारकर राज्य हडप लेगे, मेरे रहते ही। नही, मैं ऐसा नही होने दूॅगा, किसी भी हालत मे मत्रियो को हडपने नही दूॅगा। योगी भूल गये कि मैं तो "खतो दतो निरारभो पवइसम्मणम गारिय" शान्त, दान्त, निरारभ अणगार प्रव्रजित हो चुका हू। अब कौन मेरा है और मैं किसका हू। वे अपनी मूल स्मृति से विस्मृत हो गए। मन का वेग बडी तीव्रता के साथ प्रतिक्रिया करने लगा। मन के द्वारा ही कल्पित पाच सौ मत्री सामने आ गये। मन से ही घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अचूक निशाने के साथ कल्पित धनुष से कल्पित तीर छूटने लगे। एक के बाद एक मत्री तीरो से आहत होते हुए खत्म होने लगे। इस प्रकार एक नही, दो नही, 499 मत्रियो को भूमिसात कर दिया गया। एक मत्री अवशेष रह गया। इधर तरकस मे तीर खत्म हो चुके थे। क्रोधवश मन तीव्रता के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया मे लगा हुआ था। योगी रूप सम्राट् ने विचार किया– खैर

तीर समाप्त हो गये तो कोई बात नही, मेरे मस्तक पर मुकुट तो विद्यमान है। मै मुकुट को भी उतार कर इस तरीके से फेकूगा कि यह भी खत्म हो जायेगा। मुझे एक भी शत्रु को अवशेष नहीं रखना है। कितना आवेश, कितना क्रोध और कितनी हिसात्मक भावना चल रही थी, योगी के मन मे। उन्हीं तीव्र भावनाओ के साथ उनका ऊपरी उठा हाथ नीचे आने लगा। जब योगी के मन मे इस प्रकार की तीव्रता चल रही थी, तब तुमने मुझे पूछा तो राजन् मैने बतलाया– यदि उन योगी का उस समय आयुष्य बन्धन हो जाय तो सातवी नरक मे जाय।

कुछ ही क्षणो के बाद अर्थात् ज्यो ही उनका हाथ मस्तक पर गया और उनको भान हुआ– अहो, मै तो साधु बन चुका हूँ। आगारी से अणगारी बन गया हूँ। भोग से योग की तरफ मुड चुका हूँ। अब मेरा है कौन? पुत्र, राज्य, परिवार की बात तो दूर रही, यह शरीर भी मेरा नही है। एक न एक दिन यह भी विलीन हो जायेगा। मैने स्वत्व को भूल कर कैसा अकार्य कर डाला। अरे जहा साधक सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव की हिसा नही करता, वायु काय के रक्षण के लिए मुख पर मुख वस्त्रिका धारण करता है। उसके हिसा का त्रिकरण, त्रियोग से त्याग होता है। वहा आज मैंने साधकावस्था मे कितनी क्रूर मानसिक हिसा कर डाली, अहो, मै ऐसे पाप से अपनी आत्मा की "निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि" निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और ऐसे दुष्कृत्य को वोसिराता हूँ। इस प्रकार जब उनकी भावनाएँ, अध्यवसाय अशुभ से हट कर शुभ की ओर मुडने लगे, विचारो मे तीव्रता के साथ समीक्षण होने लगा। जिन समीक्षणता मे अशुभ विचार हटकर शुभ विचारो की प्रादुर्भूति उत्पत्ति होने लगी। तब जिन कर्मदलिको का अशुभ रूप मे सचय हो चुका था वे कर्मदलिक शुभ रूप मे परिणत होने लगे। यह शुभरूपता वृद्धिगत होती चली गई। जब उनके विचार शुभ रूप मे गति कर रहे थे तब राजन् मैंने यह कहा था कि यदि इस समय वे आयुष्य बधन करे तो उच्च देवलोक मे जावे। किन्तु देवानुप्रिय! उनकी भावना शुभ, शुभतर, शुभतम होती चली गई। वे गुणस्थानो पर आरोहण करने लगे। क्रमश सातवे, आठवे गुणस्थान मे आकर क्षपक श्रेणी मे प्रवेश कर गए। अन्तर्मुहूर्त मे ही वे नवा, दसवा, बारहवा गुणस्थान पार करते हुए घनघाती कर्मो को क्षय करके केवलज्ञान, केवलदर्शन पाकर, तेरहवे गुणस्थान मे प्रवेश कर चुके है। अन्तरग के समीक्षण द्वारा जिन्होने काषायिक क्रिया–प्रतिक्रिया को विनष्ट कर आत्मा का सही रूप मे

सशोधन किया है। अर्थात् घनघाती कर्मो को विलग कर डाला और अन्त मे मुक्ति को भी प्राप्त कर लिया।

सम्राट् की जिज्ञासा शात हुई।

निज समीक्षण करें

बधुओ! यह तो एक रूपक है। चाहे यह किसी भी रूप मे हो, किन्तु इससे यह तथ्य उजागर होता है कि मन किस प्रकार से तीव्र वेग से क्रिया-प्रतिक्रिया करने लगता है। जब आत्मा के विचार अधोगामी बनते हैं, तो आत्मा कहा से कहा पहुच जाती है। देखिये! उन योगी का जीवन कहा से कहा तक पहुँच गया। मालूम है आपको! क्या नाम था उनका? वे योगी थे, "प्रसन्नचन्द्र राजर्षि" और जब उनके विचार ऊर्ध्वगामी बने और जीवन का सही समीक्षण होने लगा तो उनकी आत्मा नर्क, स्वर्ग से हटकर अपवर्ग मे जा पहुँची। कवि आनन्दघनजी ने यही कहा है- "निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यातम कहिये रे।" जो क्रिया निज स्वरूप को प्राप्त कराने वाली है अर्थात् जिस क्रिया के करने से निज स्वरूप मे निखार आता है वह क्रिया अध्यात्म क्रिया है। मानसिक क्रिया के साथ वचन और काया का पुट भी रहता है। आप सभी के पास मे मन, वचन और काय-- ये तीनो योग विद्यमान हैं। इनका किस रूप मे प्रयोग करना- यह आप ही के ऊपर निर्भर है। वीतराग वाणी तो आपको श्रेयस् पथ की ओर इगित कर रही है। यदि निज स्वरूप को पाना है, दबी हुई आत्मिक शक्ति को विकसित करना है तो जिस प्रकार की क्रिया प्रभु श्रेयास ने की थी, उसी प्रकार मन, वचन, काय योग की क्रिया को आत्म समीक्षण मे नियोजित करे।

निज स्वरूप क्या है?

- जीव और पुद्गल
- स्वभाव पर विभाव का आधिपत्य
- लक्ष्य सम्यक्दृष्टि आत्मा का
- चित्त सभूति अनगार
- मुनि प्रवर का भव्य उपदेश
- अध्यात्म और अनध्यात्म क्रिया के प्रतीक
- अध्यात्म क्रिया कौनसी?
- अध्यात्म क्रिया से निज रूप की अभिव्यक्ति

पुरिसा अत्ताण–मेव अभिनिगिज्झ एव दुक्खा पमोक्खसि

–आचाराग 3/3

हे पुरुष! तू अपने–आपका निग्रहण कर, अपने–आपके निग्रहण से ही समस्त दुक्खो से विमुक्ति हो पाएगी।

जब तक साधना मे निज स्वरूप को जानने एव अभिव्यक्त करने के लिए आत्मा की प्रवृत्ति नही होगी, तब तक आत्मा अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकती।

अध्यात्म की क्रिया वही है जिससे नर स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है। परन्तु जो क्रिया निज स्वरूप को अभिव्यक्त न कर ससार अभिवृद्धि कराने वाली हो, वह अध्यात्मिकी नहीं हो सकती।

क्रिया के दो रूपो से होने वाले परिणाम की अभिव्यक्ति चित्त–सभूति अनगार के घटना–क्रम से स्पष्ट हो जाती है।

निज स्वरूप जे क्रिया साधे, ते अध्यात्म लहिये रे।

जे किरिया करी चउगति साधे, ते न अध्यातम कहिये रे।।

।। श्री श्रेयांस .. ।।

बन्धुओ! निज स्वरूप क्या है? वास्तव मे अपने–आपका स्वरूप क्या है ? जब तक उसका बोध नही होगा, तब तक निज स्वरूप की साधना नही की जा सकती। आज के युग मे साधना के विभिन्न प्रकार चल रहे हैं। इसी युग मे ही नही, प्रभु ऋषभदेव के समय मे भी 363 मतो का विस्तार हो चुका था। ये विभिन्न मत अपने–अपने स्वरूप को जानने के लिए साधना करने लगे। लेकिन स्वरूप साधना की कौनसी क्रिया है, इस ज्ञान के अभाव मे उनकी क्रिया मुक्ति के स्थान पर ससार को बढाने वाली बन गई।

साधना कितनी ही बडी हो, किन्तु निज स्वरूप के विवेक के अभाव मे सही लक्ष्य प्राप्त ही नही करा सकती। जिस यात्री को इसका भी ज्ञान नही है कि मुझे कहा जाना है, वह यात्री कितनी ही यात्रा कर ले, किन्तु सही स्थान पर नही पहुँच सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट कहा है–

मासे मासे उजो बालो, कुसग्गेणं तु भुजइ।

न सो सुयक्खाय धम्मस्स, कल्ल अग्घइसोलसि।।

मास–मासखमण की तपस्या करने वाला अज्ञानी साधक जिसे लक्ष्य का यथार्थबोध नही है वह पारणे के अन्दर भी, क्यो न कुश–डाभ के अग्र भाग पर आए, उतना ही आहार करता है। किन्तु उसका आचरण श्रुताख्यात धर्म की सोलहवी कला के बराबर ही नही है।

कवि ने इसलिए कहा है कि निज–स्वरूप का ज्ञान करके जो क्रिया की जाती है, वह तो अध्यात्म को प्राप्त करने वाली होती है, किन्तु जो क्रिया निज स्वरूपबोध प्राप्त किए बिना अज्ञान दशा मे की जाती है, वह क्रिया चारगति रूप ससार को बढाने वाली होती है। ऐसी क्रिया अध्यात्म क्रिया नहीं कही जा सकती।

जीव और पुद्गल

यह आत्मा अनादिकाल से जड पुद्गलो से सम्बद्ध बनी हुई है। जन्म–जन्मान्तरो से कर्म पुद्गलो से जकडी हुई होने के कारण उसे निज

स्वरूप का भान नही हो पा रहा है। निज स्वरूप का बोध प्राप्त करने के लिए यह सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। मनुष्य जीवन मे ही स्व का परिपूर्ण समीक्षण किया जा सकता है। चारगति मे यही एक ऐसी गति है जिससे आत्मा निज का समीक्षण करके लक्ष्य के चरम छोर पर जा सकती है। मनुष्य कितना ही वैभव पा जाय, ससार की समृद्धि भी प्राप्त कर ले, मानुषिक काम भोगो को भी विपुल मात्रा मे प्राप्त कर ले, किन्तु उनसे उसे कभी भी आत्म समीक्षण नही होने वाला है। वर्तमान युग के अधिकाश मानव सासारिक सुख–सम्पत्ति के पीछे स्व को भूलते जा रहे हैं। उनकी प्रत्येक गतिविधि भौतिक पुद्गलो को प्राप्त करने मे ही लगी हुई है। लेकिन उन तत्त्वो से आज तक सुख–शान्ति को प्राप्त नही कर पाये है। क्योकि उन भौतिक तत्त्वो मे वास्तविक सुख का अश भी विद्यमान नही है। इतना होने पर भी मानव का भौतिक पुद्गलो की ओर आकर्षित होने का यही कारण है कि जन्म–जन्मान्तर से उसकी आत्मा उन्ही पुद्गलो से सम्बद्ध रही है। जो व्यक्ति गन्दगी मे रहने के अभ्यासी हो जाते हैं, तो उन्हे कितना भी सुगन्ध मे ले जाने का प्रयास किया जाय तथापि वे गन्दगी मे जाना ही अधिक पसन्द करते हैं। बहुत दुर्लभ व्यक्ति होते है जो गन्दगी से हटकर सुगन्ध मे आ पाते हैं। ठीक इसी प्रकार यह आत्मा भी अनादि काल से वैभाविक तत्त्वो की ओर आसक्त रही है। अत अब भी उसे वैभाविक तत्त्व ही अच्छे लगते हैं। वह उन्हे पाने के लिए दौडती है। बहुत कम आत्माए ऐसी होती हैं, जो वैभाविक तत्त्वो से हटकर स्वाभाविक आत्म–स्वरूप की ओर आकर्षित बनती है।

स्वभाव पर विभाव का आधिपत्य

षट्द्रव्यात्मक लोक कहा गया है। षट्द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय। सम्पूर्ण लोक मे इन षट्द्रव्यो का अस्तित्व शाश्वत रूप से विद्यमान है। धर्मास्तिकाय, चलन क्रिया मे, अधर्मास्तिकाय स्थिर क्रिया मे, आकाशास्तिकाय, अवगाहन मे सहयोगी बनते हैं। काल परिवर्तन मे हेतु है। ससार मे परिलक्षित विचित्रता मे हेतु मुख्यतया पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय है। जीव और पुद्गल के सयोग से ससार मे विविधता दिखलाई देती है। प्राणीवर्ग अनादि–अनन्त काल से पुद्गलो से सम्पर्कित रहा है। आत्मा जब पुद्गलो के साथ अपना अभिन्न सम्बन्ध जोड लेती है, तब आत्मा मौलिक स्वरूप को भूल जाती है।

कोई भी पुद्गल कभी भी शाश्वत रूप से उसी रूप मे नही रहते है। अर्थात् कोई भी कर्म हो, अपनी काल मर्यादा बीतने के बाद आत्मा से विलग हो जाता है। पुद्गलो का सयोग–वियोग बना ही रहता है। जब आत्मा अपने स्वभाव का समीक्षण कर सत्पुरुषार्थ की ओर गतिशील होती है, तब कर्मों का आत्मा से अपुनर्भाव के रूप मे विलगीकरण हो सकता है।

श्रेयास प्रभु ने स्व–भाव का समीक्षण कर लक्ष्य पर सतत प्रयाण किया था। परिणामत उनकी आत्मा से वैभाविक तत्त्व हटते चले गये। स्व–स्वरूप निरन्तर निखरता चला गया। अनन्त प्रभु ने अपुनर्भाव से समस्त कर्मों का क्षपण कर मुक्तावस्था प्राप्त कर ली। आज जितनी भी आत्माए ससार मे परिभ्रमण कर रही हैं, उनका मूलत हेतु वैभाविक तत्त्वो का आत्मा पर आधिपत्य है। जिसमे आत्मा की स्वाभाविक क्रिया गौण हो जाती है और वैभाविक क्रिया मुख्य बन जाती है।

लक्ष्य सम्यक्दृष्टि आत्मा का

जब से आत्मा सम्यक्दृष्टि अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तब से उसका लक्ष्य निज–स्वरूप को साधने का बन जाता है। सम्यक्दृष्टि आत्मा जड–चैतन्य के स्वरूप को समझने लगती है। पुद्गल मेरा साध्य नही है। आत्मा पुद्गलो से प्रतिबधित हे। मेरा लक्ष्य आत्मा को वैभाविक तत्त्वो से हटा कर शुद्ध स्वरूप मे ले जाना है। इस प्रकार के आत्मिक बोध के साथ सम्यक्दृष्टि आत्मा विकास मार्ग पर बढने लगती है। एक दृष्टि से विचार किया जाय तो सम्यक्त्व अवस्था आत्म विकास का प्रथम चरण है। जब तक लक्ष्यानुरूप गति नही होती, तब तक आत्मा अभीष्ट अर्थ सिद्ध नही कर सकती। सम्यक् अवस्था निज स्वरूप का विज्ञान कराने का प्राथमिक प्रयास है। सम्यक् बोध पा लेने पर आत्मा के विकास क्रम का सही लक्ष्य बन जाता है। सम्यक् दृष्टि आत्मा निश्चित रूप से एक न एक दिन मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेती हे।

सम्यक्दृष्टि आत्मा के परिपूर्ण विकास क्रम मे मानव देह बहुत सहायक बनता है, मानव तन मे रह कर आत्मा परिपूर्ण विकास की दिशा मे गतिशील बन सकती है। सिद्ध स्वरूप मे रमण करने वाली आत्माओ ने सिद्धावस्था की प्राप्ति इस मानव तन से ही की थी यह शाश्वत सत्य है कि निज स्वरूप मे परिपूर्ण निखार मानव तन से ही मिलता है।

प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा को परिपूर्ण विकास की प्राथमिक भूमिका सम्यक्त्व की प्राप्ति होना आवश्यक है। मानव देह से जहाँ सम्यक्दृष्टि आत्मा आत्मदीप जगा सकती है, तो उसी मानव देह से आत्मा पतन की ओर भी जा सकती है। भव्य आत्माओ को उन्नति का सम्यक् बोध प्राप्त कर प्रवृत्ति की दिशा मे बढना चाहिए।

चित्त-संभूति अनगार

निज-स्वरूप की साधना के लिए प्रस्थित हुए थे चित्त और सभूति। दोनो हरिजन पुत्र सहोदर भ्राता थे। नागरिक लोक हरिजनो को निम्नतम जाति का बतला कर उनकी निन्दा करते थे। चित्त-सभूति की गायन-कला बहुत ही सुमधुर थी। किनतु जब भी वे गाने लगते, निम्न जाति का होने के कारण उनका अपमान कर दिया जाता था। इस प्रकार के अपमान के कडुवे घूट को बार-बार पीने की स्थिति मे वे नही थे, दोनो ने मिलकर विचार किया और वन अटवी की ओर प्रस्थान कर गए। भयानक अटवी मे जाकर उन्होने उत्तुग शिखर वाला एक पहाड देखा। अब तो भृगुपात पहाड से गिर कर प्राणाहरण करना ही उचित है। इन विचारो के साथ ज्यो ही वे पर्वत के शिखर पर पहुचे तो वहा पर धवल वस्त्र से सुशोभित, कृश शरीर किन्तु दमकती हुई देहश्री से चमत्कृत ध्यानस्थ योगी के दर्शन कर दोनो को एक विलक्षण प्रकार की शान्ति का अनुभव हुआ। वन्दन करने के अनन्तर मुनि पुगव के सुखद सान्निध्य मे उपविष्ट हुए।

ध्यान को पूर्ण कर ज्यो ही साधक के नेत्रो का उन्मीलन हुआ तो सुदृढ देह वाले दो युवा पुरुषो को सामने (समक्ष) पाया। मुनिवर की करुणामय दृष्टि के वर्षण से दोनो की अन्तर्वेदना हिम की तरह पिघलती ही चली गई। अन्तर्वेदना की मूक अभिव्यक्ति ही मुनि प्रवर के लिए पर्याप्त होती है।

मुनि प्रवर का भव्य उपदेश

दोनो की अन्तर्वेदना को समझते हुए मुनिवर ने पतितपावन क्लेदोपहारक उद्बोधन किया-

भव्य पुरुषो को दु ख विमुक्ति और शाति की अवाप्ति कभी प्राणापहरण से नहीं मिलती। प्राणापहरण (आत्महत्या) वस्तुत दु खमुक्ति नहीं अपितु दु ख की दीर्घ परम्परा को बढाने वाला महाद्वार है। भद्रिक आत्मा थोडे से घबरा कर अमूल्य जीवन को समाप्त करने के लिए तत्पर हो जाती है किन्तु वह यह नही

समझ पाती कि इस कुकृत्य का कितना कटु परिणाम आने वाला है।

शास्त्रकारो ने आत्मघाती को महापापी कहा है। जो व्यक्ति अपने ही ऊपर वार करना चाहता है उस व्यक्ति के कितने क्रूर परिणाम बनेगे, जिसकी कल्पना तक नही की जा सकती।

जान–बूझकर जब एक छोटे–से जन्तु की भी हत्या करनी होती है, तब मन मे कितने क्रूर परिणामो का सचय करना होता है। और पचेन्द्रिय प्राणी, उसमे भी मनुष्य की हत्या करने के लिए तो न मालूम कितने क्रूर परिणामो का सचय अपेक्षित होता है। इन सबसे भी बढकर जब अपना ही प्राणापहरण करने की स्थिति आती है, तब मन को इस भयकर हिसा करने के लिए कितना मजबूत करना होता है। ऐसी भयकर हिसा आत्मा को निश्चय ही पतन के अधकूप मे गिरा देती है।

सुज्ञ पुरुषो! तुम दोनो तो बुद्धिमान हो, विद्या और कला मे निष्णात हो, सर्वांगो से परिपूर्ण हो, इतना सब–कुछ होते हुए भी मात्र तथाकथित अछूत के अपमानो का घूट न पी सकने के कारण कितना बडा कुकृत्य करने के लिए तत्पर हो रहे हो, जो कतई योग्य नही है।

अब जाग्रत हो जाओ! जिनवाणी का सबल पाकर आत्मसिद्धि के लिए तत्पर हो जाओ! जिनेश्वरो का यह तुमुल उद्घोष है–

पुरिसा अत्ताण–मेव अभिनिगिज्झ,

एव दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुष! तू अपने–आपका निग्रहण कर, अपने–आपके निग्रहण से ही समस्त दु खो से मुक्ति हो पाएगी। आत्मत्व की दृष्टि से चराचर लोक की समस्त आत्माए समान हैं। उनमे जाति–पाति का कोई भेदभाव है ही नही। ससार की कोई भी आत्मा परम स्वरूप की प्राप्ति के लिए चरम पुरुषार्थ द्वारा अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है।

मुनि प्रवर की अमियवाणी मे सराबोर होती हुई उनकी प्रसुप्त अन्तरात्मा जाग्रत हो उठी। सही पथ प्रदर्शन जो मिल गया था। जीवन्त साधना को अपनाने के लिए दोनो ने तत्क्षण सकल्प शक्ति की दृढता के साथ जीवन का आमूलचूल परिवर्तन कर डाला। पतन से उन्नति की ओर बढ चले। आगारी से अणगारी बन गए। बाह्य सस्कार को त्याग कर अन्तरग को सस्कारित करने मे तन्मय हो गए।

अध्यात्म और अनध्यात्म क्रिया के प्रतीक

साधना की श्रेणी पर आरोहण करने वाले दोनो युवा मुनि ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के साथ तपाराधना मे विशेषत तल्लीन बने हुए थे। हस्तिनापुर मे मासखमण के पारने के लिए भिक्षार्थ जाते समय सभूति अणगार को नमुचि मत्री द्वारा दिए गए त्रास से उनका प्रसुप्त क्रोध फुफकार उठा। स्थान पर आकर तेजो–लेश्या के प्रभाव से हस्तिनापुर के आकाश को अधकार एव ज्वाला पटल से व्याप्त कर दिया।

इस भयानक स्थिति को उपशात करने के लिए स्वय चक्रवर्ती सनत्कुमार अपनी पटरानी सुनन्दा के साथ सभूति अणगार के चरणो मे उपस्थित हुए। प्रणतिपूर्वक विनम्रता के साथ अविनय की क्षमायाचना करने लगे। कई स्थलो पर ऐसा भी मिलता है कि सुनन्दा पटरानी ने भक्ति की अतिरेकता मे मर्यादा को भूलकर सभूति अणगार के चरण स्पर्श कर लिए।

इस स्पर्श सुख के अनुभव ने सभूति अणगार के साधना रूप समुद्र मे चाचल्य रूप उत्ताल तरगे पैदा कर दी। उनका जीवन, जो निज स्वरूप की साधना की ओर अग्रसर था, वही बाह्याभिमुखी होने लगा। चित्त अनगार ने बहुत समझाया– निदान और बाह्याभिमुखी साधना के कटु परिणामो पर मार्मिक सन्देश दिया, किन्तु सभूति अनगार के सयम समुद्र मे जो उत्ताल तरगे उठ चुकी थी वे शान्त नही हो पाई। कही–कही घटनाक्रम इस प्रकार भी मिलता है कि चित्त अनगार सभूतिजी को समझा रहे थे कि शान्त हो जाओ। देखो, तुम्हारे से माफी मागने के लिए स्वय चक्रवर्ती एव उनकी पटरानी आई हैं। तब सभूति ने सोचा कि देखू तो सही, चक्रवर्ती एव उनकी पटरानी श्रीदेवी कैसी होती हैं? इसी दृष्टि से उन्होने ऑख खोली और पटरानी के रूप पर मोहित होकर निदान कर बैठे। खैर, रूपक कैसा भी हो। आखिर उन्होने प्रतिज्ञा कर ही ली– "यदि इस तपस्या का यत्किंचित फल हो तो मैं आगामी भव मे चक्रवर्ती बनूँ।"

बस, फिर क्या था? अध्यात्म का जीवन, जो साधना को उन्नति की ओर बढा रहा था, वही अब पतन की ओर बढने लगा। साधना आध्यात्मिकी न रहकर भौतिकी बन गई। यह निदान श्वेत पौष्टिक दुग्ध मे फिटकरी का काम करने लगा। अन्तत साधक–जीवन पतन की ओर उन्मुख हुआ, क्यो न चक्रवर्ती पद की प्राप्ति कर ली जाय किन्तु अन्तत परिणाम भयानक ही

निकला। इधर चित्त अणगार ने अपने सयमी समुद्र को शान्त एव प्रशान्त ही बनाए रखा। अन्तत उन्हे अध्यात्म-साधना का अमर फल प्राप्त हो ही गया।

अध्यात्म क्रिया कौनसी?

कथा का कलेवर बहुत विशाल है-- सज्जनो! पर कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जब आत्मा निज स्वरूप की साधना के लिए प्रयत्नशील हो जाती है तब वह अध्यात्म भाव को प्राप्त कर लेती है। परम अध्यात्म की अभिव्यक्ति ही चरम सुख को प्राप्त कराने वाली होती है, किन्तु जब क्रिया की आराधना आत्माभिमुख न होकर बाह्याभिमुख होती है, तब वही साधना आत्मा को चार गति--चौरासी लाख जीव योनियो मे इतस्तत परिभ्रमण कराने वाली होती है। ऐसी साधना को कभी भी अध्यात्म साधना नही कह सकते।

आज के कई साधक साधना के सच्चे स्वरूप को न समझकर आराधना करने वाले अध्यात्म पथ से च्युत हो जाते हैं, बाह्य रूप से तो यही लगता है कि उनकी आत्मा अध्यात्म की साधना मे प्रवृत्ति कर रही है, किन्तु यथार्थ मे वह अध्यात्म साधना न होकर बाह्य--भौतिकी साधना होती है।

जिस साधक के मन के छोटे--से कोने मे भी यह भावना रही है कि मेरी साधना से लोगो पर अच्छा प्रभाव पडे। मेरी यश--कीर्ति का प्रसार हो, ऐसे साधक की साधना बाह्य रूप से कितनी ही कठोर एव अध्यात्म प्रसाधिका हो, किन्तु यथार्थ मे वह भौतिकी होती है। शास्त्रकारो ने यह स्पष्ट कहा है--

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माण कामए।

बहु पसवई पाव, माया सल्ल च कुव्वइ।।

जो साधक पूजा--प्रतिष्ठा के चक्कर मे रहता है, मान और सम्मान की कामना जिसे घेरे हुए है, उसके लिए माया शल्य--बाह्य रूप से प्रतीयमान अध्यात्म साधना को करने वाला साधक बहुत--से पाप कर्म का ही सचय करता है।

अध्यात्म क्रिया से निज रूप की अभिव्यक्ति

सुज्ञो! अध्यात्म की साधना के लिए निश्चय ही सबसे पहले निज स्वरूप को साधने के लिए प्रवृत्ति करनी होगी।

कवि ने इसी बात को कविता के माध्यम से स्पष्ट किया है--

निज स्वरूप जे किरिया साधे,

ते अध्यात्म लहिये रे।

जे किरिया करी चउगति साधे,

ते न अध्यात्म कहिये रे।। श्री श्रेयास जिन . .

श्रेयास प्रभु की प्रार्थना भव्य आत्माओ को निज स्वरूप को साधने के लिए प्रेरित कर रही है। जितने भी तीर्थंकर भगवत होते हैं, वे सभी सर्व प्रथम निज–स्वरूप की समीक्षा करते हैं। निज–स्वरूप की अभिव्यक्ति होने पर ही देशना सुधा के माध्यम से अन्य प्राणियो को उद्‌बोधित करते हैं।

अध्यात्म साधना द्वारा, जिज्ञासु आत्माओ को निज–स्वरूप की जागृति कराने वाली क्रियाराधना को भी जानना होगा।

आत्मा की परम सिद्धि को पाने के लिए जो भी साधक निज–स्वरूप की साधिका अध्यात्म की क्रिया मे शामिल होगा व समीक्षण दृष्टि अपनाएगा वह अवश्य ही अभीष्ट को प्राप्त करने मे सफल हो सकेगा।

○○○

आत्मा से आत्मा का समीक्षण

- ☛ विश्व के छ प्रतिनिधि
- ☛ खिलौने आत्मा के
- ☛ ससारी आत्मा के विभाव परिणाम
- ☛ प्राणियो के विविध रूप
- ☛ अमूल्य क्षण मानव जीवन के

  शैवालाच्छादित कछुआ कर्माच्छादित आत्मा
- ☛ सम्यक् दृष्टि का स्वरूप
- ☛ निज स्वरूप क्रिया साधे चउगति साधे के प्रतीक
- ☛ सपेहए अप्पगमप्पएण

विश्व के छः प्रतिनिधि

श्री श्रेयास जिन अन्तरजामी, आतमरामी नामी रे।
अध्यातम पद पूरण पामी, सहज मुगतिगति गामी रे।।
निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यातम लहिये रे।
जे किरिया करि चउगति साधे, ते न अध्यात्म कहिये रे।।

बधुओ। प्रात काल का समय प्राकृतिक दृष्टि से सुहावना समय है। *जीवन मे नई स्फूर्ति और नई प्रेरणा देने वाला है। मनुष्य का जीवन प्रकृति* से बहुत प्रभावित है और प्रकृति का प्रभाव हर प्राणी पर पडता ही है। सवेदनशील मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रकृति का अधिक असर तब होता है जब उसका चिन्तन अन्वेषणात्मक दृष्टि से, खोज की दृष्टि से रहस्य को पाने की कोशिश करता है।

इस नैचुरल रचना मे जितने सदस्य रहे हुए हैं, उनमे एक ही सदस्य ऐसा है कि जिसने अपने नैसर्गिक, प्राकृतिक स्वभाव को छोडकर पर पदार्थो को पाने की चेष्टा की है। उसका स्वभाव इतना जबरदस्त है कि पर्याय की दृष्टि से भले ही वह झुकता हो, परन्तु स्व–स्वरूप की दृष्टि से कभी नही झुकता है। इन छ खिलाडियो मे मनुष्य रूप से वह द्रव्य प्रधान रूप से रहा हुआ है। प्रधान से तात्पर्य, सब से अधिक शक्तिसम्पन्न माना गया है। इसमे जो शक्ति है, जो विवेक का दीपक है, जो क्षमता है, वह क्षमता अन्य सदस्यो मे नही। आप कभी कल्पना कर बैठेगे कि महाराज ने सृष्टि के छ सदस्य बताए हैं। जैसे चैतन्य एक सदस्य है, वैसे ही अवशेष जो पाच है, वे भी जीव होगे। क्योकि आम जनता मे सदस्यो की परिभाषा समान स्तर के आदमियो से ली जाती है। उसका मतलब है– दो हाथ, दो पैर, दो ऑखे, नाक, कान वाले। किसी परिवार मे दो सदस्य, तो किसी परिवार मे छ सदस्य है।

वैसे ही ये भी कोई छ सदस्य होगे। लेकिन वैसी बात नही है। मे जो अभी जिन सदस्यो की बात कर रहा हूँ तो वे छ द्रव्यो से सम्बन्धित है– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय। वे एकाकाश मे रहने की दृष्टि से एक परिवार के रूप मे

कहे जा सकते है। ये पाच द्रव्य की सज्ञा पाते है और जीव भी द्रव्य की सक्षा पाता है। मैने सदस्यो की दृष्टि से कहा है न कि जीव है इस दृष्टि से। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय भी एक स्वरूप से विद्यमान है। आकाश भी इसी स्वरूप से विद्यमान है। इनके मूल मे परिवर्तन नही होता। इनमे जो स्वभाव हैं वे तो रहेगे ही और पुद्गल द्रव्य भी इस ससार मे सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है। काल– यह औपचारिक द्रव्य भी और काल द्रव्य के रूप मे माना गया है। इन पॉचो के रूप मे जो चैतन्य आत्मा है वही इन पुद्गलो को ऊँचा–नीचा करता रहता है। इन पदार्थो के साथ ज्यादा प्रीति आत्मा ही करता रहता है, क्योकि खेलने का स्वभाव, रमण करने का स्वभाव आत्मा का ही है। वह अपने स्परूप मे रमण करना भूल जाता है तो वह पर पदार्थो मे रमण करने लगता है।

खिलौने आत्मा के

बच्चा बचपन की अवस्था मे खेलना पसद करता है। वह खिलौनो से खेलता है, परन्तु बच्चे की वह खिलौने से खेलने की आदत, ज्ञान के अभाव में मनोविनोद की आदत है। जैसे बच्चे की आदत मिट्टी के खिलौने से खेलने की है, वैसे ही इस आत्मा की आदत भी बच्चे के तुल्य बनी हुई है। बच्चा रग–बिरगे मिट्टी के बनाए हुए खिलौने से खेलता है वैसे ही यह अपने हाथ के बनाये हुए खिलौनो से खेलता है। आप जरा गम्भीरता से चिन्तन कीजिए। बडे–बडे बगले किसने बनाए? फर्नीचर का सामान किसने सजवाया? ताश, चौपड किसने बनवाए? ताश चौपड स्वय मे तो नहीं समझते है कि हम ताश, चौपड है, परन्तु ताश, चौपड को बनाने वाली आत्मा है, और खेलने वाली भी आत्मा है, और उन्ही से वह खेलती है, मनोविनोद करती है। सिनेमाघर (टॉकिज) किसने बनवाए, ओर फिल्म किसने बनाई? वही इसमे आत्मा जाकर बैठती है दूकान पर जाकर बैठती है, तो यह खिलौनो का व्यपार करती है। मिट्टी से आप सब तरह की मिट्टी ले सकते हैं, इसमे सख्त और कोमल भी है। सोना, चॉदी ये भी मिट्टी के सख्त रूप हैं। सोना, चाँदी गये तो नोट आए। ये भी तो उस तत्त्व के बने हुए हैं। अधिकाश तत्त्व इसी मिट्टी से बने हुए हैं।

संसारी आत्मा के विभाव परिणाम

जो दृश्य पदार्थ है– नजर आ रहे हैं वे भी अधिकाश रूप से मिट्टी पुद्गल से बने है और आत्मा उन्ही खिलौनो से खेल रही है, और इनमे ही आनन्द मानती है। क्या कभी इन खिलौनो से विराम लेने की मन मे आती है? कभी इन खिलोनो से खेलने की अनिच्छा भी होती है? या वह दिन दूनी, रात चौगुनी बढती ही रहती है? छोटे बच्चे तो उनको जल्दी छोडकर दूसरी तरफ आ जाते हैं, परन्तु ये बडे–बडे, इनको बच्चे कहूँ या क्या? जो इन पदार्थो मे रमण करते हैं, अपने को भूल जाते हैं तो वे बच्चे ही हैं। उन्होने अपने–आप का घेरा बना रखा है। उसी चार मस्तिष्क मे इनका घूमना होता है। उसी मे आनन्द लेते हैं। रात और दिन मस्तिष्क मे एक ही चक्कर घूमता रहता है। कैसे धन पैदा किया जाय? यश, कीर्ति पैदा की जाय, लेकिन वह यह नही सोच पाता कि ये सब वैभाविक परिणाम यथार्थ मे शात प्रदायक नही हैं।

प्राणियों के विविध रूप

शास्त्रकार ने सक्षिप्त मे जो छ प्रकार के जीव बताए, इनमे पॉच स्थावर और छठा त्रसकाय है। स्थावर मे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति हैं, और छठा त्रसकाय। अब पॉच जो हैं ये दो प्रकार के हैं— एक सूक्ष्म और एक बादर। बादर तो हमको दिखते हैं, यह वृक्ष दिखता है, मिट्टी दिख रही है, यह तो जमीन मे रहती है, परन्तु सूक्ष्म जो पॉच स्थावर हैं, चौदह राजूलोक मे ठूॅस–ठूॅस कर भरे हुए हैं। उनके ऊपर कोई शस्त्र लगता नही, जलाये जलते नही, काटे कटते नही । चाहे आज के शस्त्रो का प्रयोग करले तो भी सूक्ष्म कटते नही, वे आयुष्यपूर्ति से ही मरते हैं। जहाँ सिद्ध लोक है वहॉ भी भरे हुए है। हमारी आत्मा सूक्ष्म एकेन्द्रिय मे जन्मी या नही? एक बार नही अनेको बार जन्मी है। सिद्ध क्षेत्र मे भी जन्म ले चुकी हे, किन्तु जैसे नशे मे व्यक्ति पडा रहता है। नशे मे, बेभानी मे यदि तीर्थंकरो के सान्निध्य मे चला जाय, तब भी समझता है कि मैं तीर्थंकर भगवान के सान्निध्य मे हू। हमारी आत्मा एक नही अनन्त बार सिद्ध भगवान् के पास जा चुकी है परन्तु वहा अपनी आत्मा का अभीष्ट नही सधा।

अमूल्य क्षण मानव जीवन के

मनुष्य मे आकर अभीष्ट साध्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए। जहॉ देवो की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की बताई है। ऐसी

लम्बी जिन्दगी का बन्धन भी मानव जीवन के चद क्षणो मे ही कर लेता है, तब विचार कीजिये कि वहा की इतनी लम्बी जिन्दगी महत्त्वपूर्ण है या मनुष्य की जिन्दगी का एक मिनिट महत्त्वपूर्ण है? एक मिनिट का मूल्य जितना मनुष्य जीवन मे है, वह तेंतीस सागर का मूल्य नही है। उस देव भव मे वह निज स्वरूप की परिपूर्ण साधना करने मे समर्थ नही है। वहा जितनी पुण्यवानी है, बस उसका उपयोग किया जाता है, यहा जो पुण्यार्जन किया है, उसका फल वहा भोग रहे हैं, परन्तु आत्मदर्शन करने का अवसर वहा नही मिलता है। और यहा मनुष्य जन्म मे यदि साधना करे, मिट्टी के खिलौनो से ऊपर उठे और इनसे विराम ले तो बच्चा भी समझ जाता है जो उन खिलौनो को छोडकर, दूसरे खिलौने पकड लेता है। वैसे ही मै कहू कि आप नैसर्गिक स्वभाव मे आ जाये और कर्मो की दीवार को हटाले तो जो आनन्द आपको मिलेगा उसे आप तीन काल मे भी नहीं भूल पायेगे, फिर ये ससार के खिलौने पसन्द नही आयेग, परन्तु उनको प्राप्त करने के लिए प्रयत्न तो करना ही पडेगा। प्रयत्न के बिना सहज साध्य नही है।

शैवालाच्छादित कछुआ : कर्माच्छादित आत्मा

कभी–कभी ज्ञानी जन इसको स्पष्ट करने के लिए रूपक भी देते हैं कि एक बावडी पानी से लबालब भरी हुई थी। जब पानी काम मे नही आता तो उस पर काजी, शैवाल का इतना स्तर जम जाता है कि पानी नही दिखता है। उसी बावडी मे कछुआ और उसके परिवार के सदस्य रहते थे। सयोगवश ऐसी आधी चली कि थोडी शैवाल हट गई, और वहा पर एक कछुआ बैठा हुआ था, उसकी दृष्टि आकाश की तरफ गई कि अजीब है। यह क्या? पूर्णिमा की चॉदनी छिटक रही है। चॉद प्रकाश दे रहा था और तारे टिमटिमा रहे थे। विशाल आकाश को देखकर उसे आश्चर्य हुआ और सोचा कि मै ऐसा दृश्य परिवार वालो को दिखला दूँ, वह बुलाने के लिए गया परिवार के सदस्यो को और इधर सयोगवश दूसरा आधी का झोका आया और शैवाल से छिद्र पुन भर गया। कछुआ लाया परिवार के सदस्यो को, लेकिन वह आकाश नही दिखा सका। तब दूसरे ने कहा कि इस काई और बावडी से बढकर दुनिया मे कुछ नही है। वह कहता है कि मैंने अभी–अभी इतना बडा आकाश देखा, चन्द्रमा देखा एव चन्द्रमा की चॉदनी देखी, तारे देखे जिनका वर्णन नहीं कर सकता हूँ तो वे कहने लगे कि बताओ। वह हैरान है,

परन्तु वह इस दृश्य को भूल नही सकता है। वैसे ही इस मनुष्य जन्म मे रहने वाली आत्मा पर-पदार्थो से वास्ता रखे हुए हे और अपने निज स्वरूप को नही पहचान पा रही है। कारण आत्मा के ऊपर मोह कर्म की शैवाल छाई हुई है। यह ऐसी आत्मा पर छाई हुई है कि छिद्र नही मिलता है। कभी-कभी उपदेश सुनते हैं, धर्म करनी करते हैं, नियमित रूप से चिन्तन मनन करते हैं। ध्यान और स्वाध्याय करते हैं तो उन बादलो की तरह मोह कर्म का कुछ छिद्र हट जाय, तो जो उसको आनन्द प्राप्त होगा वह नही भूला जा सकता है। वह भले ही खुले मन से व्यापार करेगा परन्तु उसमे रमेगा नही।

सम्यक्दृष्टि का स्वरूप

सम्यकृदृष्टि के लिए आया कि-

सम्यकदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।

सब जग में न्यारा रहे, ज्यूं धाय खिलाए बाल।।

जो सम्यक्दृष्टि बन जाता है। वह सासारिक कार्यो मे तटस्थ बन जाता है। उसमे रचता, पचता नही है। पहले के श्रावक आनन्द कामदेव जैसे, जो कि अपनी सही स्थिति से चले और उन्होने शुभ पुरुषार्थ किया। जिनवाणी मे रमण करते हुए, समय आने पर अपने पुत्र को घर-बार सम्भलवाकर धर्म-ध्यान मे लग गए थे। तो मनुष्य का एक मिनिट तो बहुत होता है, चौदहवे गुणस्थान का स्थान मनुष्य ही ले सकता है। सर्वार्थ सिद्ध विमान मे रहने वाले देवता नही ले सकते हैं। जहॉ पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान तो न्यूनाधिक रूप से चारो गति मे पायेगे। बल्कि चारो पायेगे, परन्तु छठा गुणस्थान और इससे आगे के सातवे, आठवे, नवमे, दसवे, ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे और चौदहवे गुणस्थान तो मनुष्य मे ही पायेगे। छठे से मुनि का जीवन है व आनन्द इसमे ही अधिक मिलता है, किन्तु जब कर्मो की भारी शैवाल आ जाती है, मोह का परदा छा जाता है, तो कितना ही उपदेश दिया जाय, समझ नही आ पाता है।

निज स्वरूप क्रिया साधे, चउगति साधे के प्रतीक

अभी मुनिवर आपके समक्ष चित्त और सभूति का सवाद सुना रहे थे। वहा देखिये। ब्रह्मदत चक्रवर्ती सम्पत्ति मे सरावोर होकर आया और कहता है कि क्या भाई। धर्म करने का फल तुम्हे नही मिला हे? अव क्या समझाए

चित्तजी मुनि, मोह का परदा पडा हुआ है, मोह मे छाया हुआ है, उसको क्या समझाए? भाई समझाता है कि भाई समझ। जो धर्म करनी का फल वास्तविक मिला है, वह मुझको मिला है। जो तप, सयम की साधना कर रहे थे, वह आध्यात्मिक क्रिया जो आत्म साधना के लिये होनी चाहिये, तुम्हारी वह साधना धूमिल हुई और वह साधना भौतिक पदार्थों के लिये हुई? अर्थात नियाणा किया उस समय तुम्हारी आत्मा ने आत्म साधना करते–करते ससार की साधना कर ली। अधिकास तथाकथित साधक भी ऐसी ही क्रिया करने वाले पाये जायेगे। आध्यात्मिक साधना करने वाले बिरले ही पाये जायेगे। आप ससार की दृष्टि से गिनती करेगे तो सही करणी करने वाले, आटे मे नमक के बराबर भी नही हैं। बधुओ! मै क्या समझाऊँ? यह क्षण समझने की क्षमता का है जो क्रिया अपने निज स्वरूप को साधने के लिये है, क्योकि मनुष्य तन मे ही अध्यात्म का परिपूर्ण रूप पाया जाता है। चन्द्र से अधिक शात और सूर्य से अधिक प्रकाश मनुष्य जीवन मे ही पाया जाता है, उसको पाने के लिये चौबीस घण्टों मे से कुछ समय तो निकालिये और समीक्षण साधना मे रत हो जाइये, और देखिये तो सही कि कैसा आनन्द मिलता है। आप हाड–मास के पुतले तक सीमित मत रहिये। ये सारे क्षणिक (टेम्परेरी) आनन्द है। आप इनसे ऊपर उठकर बाजी तो लगाइये। यह बाजी स्वर्ग से बढकर है। वह एक तरफ है और यह एक तरफ है। यह सम्पत्ति तो अनेक बार पाई है। चित्तजी यही कह रहे हैं कि मुझे साधना का फल मिला है, तभी मै अध्यात्म रास्ते पर चला हूँ। तुमको नही मिला है क्योकि तुमने निज स्वरूप को साधने मे नहीं लगाया, और बाहरी भौतिक पदार्थो को प्राप्त करने मे तप, सयम लगाया। तभी चक्रवर्ती तो बन गये, और सोच रहे हो कि मुझे तप, सयम का फल मिला है। यह तो कचरा है, अन्न खेत मे पैदा करते हैं, तो भूसा तो अपने आप पैदा हो जाता है। चक्रवर्ती का पद भी एक दृष्टि से भूसे की उपलब्धि के समान है। यह सम्पत्ति और वैभव और चक्रवर्ती पद सब नाशवान हैं, अस्थिर है। यह जवानी भी चली जाने वाली है। आप जब तक जवान है तब तक ही इसकी निज स्वरूप को पहिचानने मे क्रिया कर सकते हो, इसको इधर और उधर भी लगा सकते हो। जब मनुष्य की शक्ति ढीली पड जायेगी, तब क्या कर सकोगे? चितजी समझा रहे हैं चक्रवर्ती ब्रह्मदत सोच रहे हें कि सयम का फल मुझे मिला हे। यह छोटे बच्चो के खिलौने की तरह ही बात

रही। वास्तविक ऋद्धि नहीं मिली। मुझे भी खिलौना मिला, कचरा मिला। परन्तु अब तो मैं कुछ कर नही सकता। निदान के बन्धन मे बध गया हूँ। स्व–स्वरूप की साधना मुझ मे सध नही सकती।

सज्जनो! आप भी तो तप, सयम की आराधना करते हैं वह केवल मुक्त स्वरूप की उपासना के लिये ही होनी चाहिये। यदि किसी फल की आकाक्षा से तप, सयम की आराधना की तो कभी अभीष्ट साध्य प्राप्त नही कर सकोगे।

संपेहए अप्पगमप्पएण

आत्मा से आत्मा का सम्प्रेषण–समीक्षण करो।

अनादिकाल से कर्माच्छादित यह आत्मा अपने द्वारा ही निर्मित विभाग रूपो के निमितो मे स्वभाव–सी बनकर बिलख रही है। इन विभाव के निमितो ने आत्म को अत्यधिक प्रभावित कर रखा है। दूसरे शब्दो मे कहे तो आत्मा स्वय के वास्तविक स्वरूप को विस्मृत कर पर पदार्थो से स्वय ही प्रभावित हो रही है, और पर पदार्थो को आसक्तिभावपूर्वक अधिक से अधिक ग्रहण करने मे प्रसन्नता का अनुभव कर रही है। अज्ञ बालक भी तो ऐसा ही करता है। रग–बिरगे खिलौनो को सगृहीत कर आनन्द का अनुभव करता है। उसको यह ज्ञान नही होता कि सुज्ञ पुरुष मुझे क्या कहेगे। वैसे ही ससारी चैतन्य देव इन पर–पदार्थो को आत्मीय भाव से ग्रहण करता हुआ, उनमे रमण करता है। पर यह चिन्तन नही करता कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवत मुझे किस रूप से अवलोकित कर रहे है। मेरा स्वरूप तो उनके समकक्ष है। पर उसको मैं स्वय ही देख नही पा रहा हूँ। इसीलिए शास्त्रकारो ने भव्यजनो को सम्बोधित करते हुए अमूल्य उपदेश के रूप मे कहा है कि–

संपेहए अप्पगमप्पएण

हे चैतन्य देव! अपने–आप से ही अपने आपको सपेहए अर्थात् सम्यक् प्रकार से देख। यानी स्वय का स्वय से समीक्षण कर। जिससे तुझे स्वय की विभाव परिणति एव स्वभाव परिणति का विज्ञान होगा और स्वय विभाव के पर–निमित्तो मे रमण की वृत्ति से आश्चर्य होगा। मैं दुनिया की दृष्टि मे इतना बडा कहलाने वाला अज्ञ बालक की तरह स्वय की शक्ति का

कैसा दुरुपयोग कर रहा हू। यह कैसी विचित्र अनादिकाल की विडम्बना है कि स्वय के भावो को ही पर–पदार्थो मे आरोपित कर उन पर–पदार्थो को आसक्ति पूर्वक स्वकीय समझने का प्रयत्न करता आ रहा हूँ। ऐसा विज्ञान तथा वैभाविक वृत्तियो से विलणीकरण तभी बन पाएगा जबकि वह स्वय से स्वय का समीक्षण करना सीख जाएगा।

OOO